यूनियन सृजन

वर्ष - 2, अंक - 4 : अप्रैल–जून, 2018, मुंबई

'फिल्मी दुनिया' विशेषांक

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया Union Bank of India

यूनियन सृजन

प्रकाशन तिथि : 07-07-2018

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया की तिमाही हिन्दी पत्रिका

वर्ष – 2 अंक – 4 अप्रैल – जून, 2018

संरक्षक
राजकिरण रै जी
प्रबंध निदेशक एवं सीईओ

प्रधान संपादक
ब्रजेश्वर शर्मा
महाप्रबंधक (मा.सं.)

कार्यकारी संपादक
राजेश कुमार
सहायक महाप्रबंधक (राजभाषा)

संपादक
डॉ. सुलभा कोरे
मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)

संपादक मंडल
वी. पी. उशारिया
महाप्रबंधक
आर. के. कश्यप
महाप्रबंधक
ब्रिगे. आशुतोष सिरौठिया, सेना मेडल
मुख्य सुरक्षा अधिकारी

राजभाषा कार्यान्वयन प्रभाग
यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई
द्वारा आंतरिक परिचालन हेतु प्रकाशित

ई–मेल: rajeshj@unionbankofindia.com
sulabhakore@unionbankofindia.com
9820468919, 022-22896595

Printed and Published by Dr. Sulabha Shrikant Kore on behalf of Union Bank of India, Printed at Jayant Printery, 352/54, Murlidhar Temple Compound, Near Thakurdwar post Office, J.S.S. Road, Mumbai-400 002 and Published from Union Bank of India, 239, Union Bank Bhawan, Vidhan Bhawan Marg, Nariman point, Mumbai-400 021.

Editor : Dr. Sulabha Shrikant Kore

इस पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के अपने हैं.
प्रबंधन का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया Union Bank of India

अनुक्रमणिका

- परिदृश्य 3
- संपादकीय 4
- दादासाहेब फाल्के पुरस्कार – सादर अभिवादन! 5
- साहित्य सृजन – सागर सरहदी 6–7
- बॉलीवुड – हिंदी फिल्म उद्योग 8–9
- टॉलीवुड – बांग्ला फिल्मों की यात्रा / फिल्मी दुनिया के बारे में 10–11
- दक्षिण भारतीय फिल्में 12–13
- मराठी सिनेमा 14–15
- भोजपुरी फिल्मों की यात्रा 16–17
- संस्कृत फिल्में 18
- कोंकणी फिल्मों का सफर 19
- पूर्वोत्तर भारतीय सिनेमा 20
- विदेशी फिल्मों का भारत में बाजार 21
- सफरनामा – पंजाबी फिल्मों का 22–23
- राजभाषा पुरस्कार 24–25
- सिने जगत के प्रसिद्ध स्टुडियो 26–27
- यात्रा संस्मरण – संदकफू 28–29
- सेंटर स्प्रेड – रामोजी फिल्म सिटी 30–31
- समाज के साथ फिल्में 32–33
- साहित्य और फिल्में 34–35
- भारतीय फिल्में और ऑस्कर 36
- काव्य सृजन 37
- नेतृत्व विकास – चलचित्र के माध्यम से 38–39
- बच्चों की फिल्में / शॉर्ट फिल्में 40–41
- कितने दिल टूटे, कितने घर 42–43
- चला मुरारी 'हीरो' बनने / गुजराती फिल्म उद्योग 44–46
- फिल्मों का आकर्षण – स्याह पक्ष 47
- फिल्मी जगत एवं दृष्टिहीन वर्ग 48–49
- राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार 50
- अरुण गोविल – साक्षात्कार 51
- अभिनय फिल्मी पर्दे पर – पर्दे के पीछे / आयुष्मान भव: 52–53
- फिल्मों में कैरियर 54–55
- राषभाषा समाचार 56–57
- फिल्मों के विभिन्न क्षेत्र 58
- आपकी नजर में... 59
- बैक कवर 60

परिदृश्य

प्रिय साथियों,

'यूनियन सृजन' के जरिए फिर एक बार आपके समक्ष उपस्थित हूँ. बैंक के मार्च, 2018 के वित्तीय वर्ष के परिणाम घोषित हुए. हमारे बैंक ने परिचालन लाभ में तो वृद्धि की है परंतु एनपीए के प्रभावी समाधान करने हेतु किए गए प्रावधानों के कारण कुल वित्तीय हानि ₹ 5247 करोड़ हो गई है. हालांकि हमारी बैलेंस शीट तुलनात्मक रूप से सुदृढ़ हुई है. हमारे प्रगति उन्मुख नजरिए ने भी हमें एनपीए वसूली में बेहतरीन स्थिति में लाकर खड़ा किया है. यह स्थिति, हमें भविष्यगत योजनाओं तथा बैंक जब अगले वर्ष अपनी उपस्थिति तथा मौजूदगी का सौंवा साल मनाएगा, तब बैंक को एक ठोस छवि और लाभप्रदता अवश्य देगी. जो प्रयास और प्रतिबद्धता आपने एनपीए वसूली में अब तक दिखाई है, उससे मुझे विश्वास है कि आनेवाला वर्ष अनेक उपलब्धियों को लेकर आएगा.

देश के विकास और उन्नति में भाषा का योगदान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, बहुत महत्वपूर्ण होता है. भाषा ही राष्ट्र को विश्व पटल पर स्थापित करती है तथा राष्ट्र छवि निर्माण में अहम भूमिका निभाती है. 'यूनियन सृजन' भी कला, साहित्य, भाषा को अहमियत देकर इस बृहद कार्य में अपना योगदान दे रही है. 'यूनियन सृजन' का यह विशेष अंक 'फिल्मी दुनिया' को समर्पित है.

जैसा कि आप जानते हैं, फिल्में और फिल्म निर्माण, भाषा, साहित्य, समाज और उद्योग का एक महत्वपूर्ण पहलू है. भारत, विश्व की सबसे ज्यादा फिल्में निर्माण करनेवाला देश है. यहाँ फिल्म निर्माण एक उद्योग के रूप में स्थापित हो चुका है. बावजूद इसके ये फिल्में आपके जीवन और मानसिकता को प्रभावित करती हैं. 'यूनियन सृजन' ने पहली बार ऐसे अलग पहलू को अपने विशेषांक के लिए चुना है और मुझे विश्वास है कि आपको यह विशेषांक मनोरंजन के साथ बहुत सारी जानकारियों से अवगत कराएगा. इस विशेषांक के जरिए विभिन्न भाषाई फिल्मों की यात्राओं को कवर कर 'यूनियन सृजन' ने भाषाओं के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी का गंभीरता से निर्वहन करने की कोशिश की है.

शताब्दी वर्ष की ओर अग्रसर बैंक की यह यात्रा बैंक को एनपीए मुक्त करे, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ,

आपका

राजकिरण रै जी

(राजकिरण रै जी)
प्रबंध निदेशक एवं सीईओ

संपादकीय...

प्रिय साथियों,

'कैमरा', 'ऐक्शन', 'साउंड', 'लाइट', कुछ ऐसी ही आवाजें कानों में गूँजती रहती हैं, आँखों के सामने पर्दे पर एक के बाद एक दृश्य बदलते रहते हैं और जब अलार्म बजता है, तब एहसास होता है कि सपनों की वह फिल्म खत्म हो गयी है और हमें नींद से जागकर अपने दैनिक कार्यों अर्थात वास्तविकता में उतरना है. 'फिल्म और जीवन' का यह संबंध वास्तविकता से भी है और सपनों के साथ भी है. 'यूनियन सृजन' के इस 'फिल्मी दुनिया' विशेषांक के जरिए हम पहली बार सर्वज्ञात, सर्व संबन्धित तथा सर्व समाहित इस विषय के विभिन्न पहलुओं को छूने का प्रयास कर रहे हैं.

भारतीय जीवन में फिल्मों का अपना महत्व है. यह एक बहुत बड़े उद्योग के रूप में भारत में चलता है. जिसमें लाभ, हानि के साथ-साथ सृजन और रोजगार भी शामिल है. हम फिल्में सिर्फ देखते हैं, हम फिल्मों के साथ हसते हैं, रोते हैं, क्रोध से मुट्ठियाँ भींच लेते हैं, खुशी से उछल पड़ते हैं. फिल्मों के नायक, नायिकाएँ हमारे जीवन की नायक-नायिकाएँ बन जाते हैं. फिल्मों का समाज हमारा समाज बन जाता है. कभी ये फिल्में हमें गहरे सोचने के लिए मजबूर करती हैं या फिर कोई कार्यवाही करने के लिए उकसाती भी हैं. हमारा सामाजिक ढ़ांचा बहुत नजदीकी रूप से फिल्मों के साथ जुड़ा हुआ है या आप यह कह सकते हैं कि हमारी फिल्में समाज के साथ चलती हैं. संक्षेप में, भारतीय फिल्मों ने सदियों से भारतीय समाज को प्रभावित किया है या यूं कह सकते हैं कि भारतीय समाज ने भारतीय फिल्मों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है.

फिल्मों की यह कैलिडोस्पिक यात्रा को हमने 'यूनियन सृजन' के इस 'फिल्मी दुनिया विशेषांक' में कवर करने की कोशिश की है. हमने यहाँ विभिन्न भाषायी/क्षेत्रीय फिल्मों की यात्रा, समाज, साहित्य से फिल्मों का संबंध, फिल्मों के विभिन्न प्रवाह, फिल्मों का इतिहास-यात्रा-उद्योग आदि अनेक पहलुओं को खंगालने का प्रयास किया है. यह प्रयास कितना सार्थक और उचित है, यह सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाओं पर निर्भर करता है. हालांकि फिल्मों का यह फ़लक काफी बड़ा और व्यापक है. उसे पत्रिका के चंद पृष्ठों में समाहित करना आसान नहीं है लेकिन हमने फिल्मों के हर पहलू को स्पर्श करने की कोशिश की है. हमें विश्वास है कि यह यात्रा और प्रयास आपको निश्चित रूप से पसंद आएगा क्योंकि फिल्में हमारी जिंदगी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी है. फिल्में और हमारी दुनिया के साथ शामिल हो गयी है 'फिल्मी दुनिया'.

आपकी राय/प्रतिक्रिया का हमें बेसब्री से इंतजार रहेगा.

शुभकामनाओं के साथ.

आपकी,

डॉ. सुलभा कोरे
संपादक

सादर अभिवादन !

दादा साहेब फाल्के पुरस्कार

दादा साहेब फाल्के पुरस्कार, भारत सरकार की ओर से दिया जाने वाला एक वार्षिक पुरस्कार है, जो किसी व्यक्ति विशेष को भारतीय सिनेमा में उसके आजीवन योगदान के लिए दिया जाता है. इस पुरस्कार का प्रारम्भ दादा साहेब फाल्के के जन्म शताब्दी वर्ष 1969 से हुआ. यह पुरस्कार वर्ष के अंत में राष्ट्रीय पुरस्कार के साथ प्रदान किया जाता है. इस पुरस्कार में10 लाख रुपए की राशि और सुवर्ण कमल दिया जाता है.

दादा साहेब फाल्के की कुछ प्रसिद्ध फिल्में :– राजा हरिश्चंद्र (1913), मोहिनी भस्मासुर (1913) सत्यवान सावित्री (1914), लंका दहन(1917) कृष्ण जन्म (1918) कालिया मर्दन (1919)

भारतीय फिल्म जगत में विशेष योगदान हेतु दादा साहेब फाल्के पुरस्कार निम्नलिखित कलाकारों को प्राप्त हो चुके हैं:–

नाम	क्षेत्र	वर्ष
देविका रानी	हिन्दी फिल्म अभिनेत्री	1969
बी.एन. सरकार	बंगाली फिल्म निर्माता	1970
पृथ्वी राज कपूर	हिन्दी फिल्म अभिनेता व निर्माता	1971
पंकज मलिक	हिन्दी व बंगाली संगीतकार	1972
रूबी मायर्स (सुलोचना)	हिन्दी फिल्म अभिनेत्री	1973
बी. नरसिम्हा रेड्डी	तेलुगू निर्देशक	1974
धीरेंद्र नाथ गांगुली	बंगाली फिल्म अभिनेता व निर्देशक	1975
कानन देवी	बंगाली फिल्म अभिनेत्री	1976
नितिन बोस	बंगाली व हिन्दी फिल्म छायाकार, निर्देशक व लेखक	1977
रायचंद बोराल	हिन्दी व बंगाली संगीतकार व निर्देशक	1978
सोहराब मोदी	हिन्दी फिल्म अभिनेता निर्देशक व निर्माता	1979
पी. जयराज	हिन्दी व तेलुगू फिल्म अभिनेता और निर्देशक	1980
नौशाद अली	हिन्दी फिल्म संगीतकार	1981
एल.वी. प्रसाद	तेलुगू तमिल व हिन्दी फिल्म अभिनेता निर्माता व निर्देशक	1982
दुर्गा खोटे	हिन्दी व मराठी फिल्म अभिनेत्री	1983
सत्यजीत रे	बंगाली फिल्म निर्देशक	1984
वी. शांताराम	हिन्दी व मराठी फिल्म अभिनेता, निर्माता, निर्देशक	1985
बी. नेगी रेड्डी	तेलुगु फिल्म निर्माता	1986
राज कपूर	हिन्दी फिल्म अभिनेता व निर्देशक	1987
अशोक कुमार	हिन्दी अभिनेता	1988
लता मंगेशकर	हिन्दी व मराठी पार्श्वगायिका	1989
अक्किनेनी नागेश्वर राव	तेलुगू अभिनेता	1990
भालजी पेंढारकर	मराठी फिल्म निर्देशक, निर्माता व लेखक	1991
भूपेन हजारिका	आसामी निर्माता, निर्देशक	1992
मजरूह सुल्तानपुरी	हिन्दी गीतकार	1993
दिलीप कुमार	हिन्दी फिल्म अभिनेता	1994
डॉ राजकुमार	कन्नड फिल्म अभिनेता	1995
शिवाजी गनेशन	तमिल फिल्म अभिनेता	1996
प्रदीप	हिन्दी गीतकार	1997
बलदेव राज चोपड़ा	हिन्दी निर्माता व निर्देशक	1998
ऋषिकेश मुखर्जी	हिन्दी फिल्म निर्देशक	1999
आशा भोसले	हिन्दी व मराठी फिल्म पार्श्वगायिका	2000
यश चोपड़ा	हिन्दी फिल्म निर्देशक व निर्माता	2001
देव आनंद	हिन्दी फिल्म अभिनेता, निर्माता व निर्देशक	2002
मृणाल सेन	बंगाली फिल्म निर्देशक	2003
अदूर गोपालकृष्णन	मलयाली फिल्म निर्देशक	2004
श्याम बेनेगल	हिन्दी फिल्म निर्देशक	2005
तपन सिन्हा	बंगाली व हिन्दी फिल्म निर्देशक	2006
मन्ना डे	हिन्दी व बंगाली गायक	2007
वी.के.मूर्ति	हिन्दी फिल्म छायाकार	2008
डी.रामा नायडू	तेलुगू फिल्म निर्माता व निर्देशक	2009
के. बालचंदर	तमिल व तेलुगू फिल्म निर्देशक	2010
सौमित्र चटर्जी	बंगाली अभिनेत्री	2011
प्राण	हिन्दी फिल्म अभिनेता	2012
गुलजार	हिन्दी फिल्म गीतकार	2013
शशि कपूर	हिन्दी फिल्म अभिनेता	2014
मनोज कुमार	हिन्दी फिल्म अभिनेता	2015
कसीनथुनी विश्वनाथ	तेलुगू फिल्म निर्देशक	2016
विनोद खन्ना	हिन्दी फिल्म अभिनेता	2017

इस प्रकार दादा साहेब फाल्के जी के फिल्मी जगत में अभूतपूर्व योगदान की याद में आज भी उनके नाम से फिल्म जगत में योगदान देने वाले कलाकारों को दादा साहेब फाल्के पुरस्कार से नवाजा जाता है.

संध्या कोली
क्षे. का. जयपुर

"मैं फिल्मों को लिखता बुनता हूँ"

- सागर सरहदी

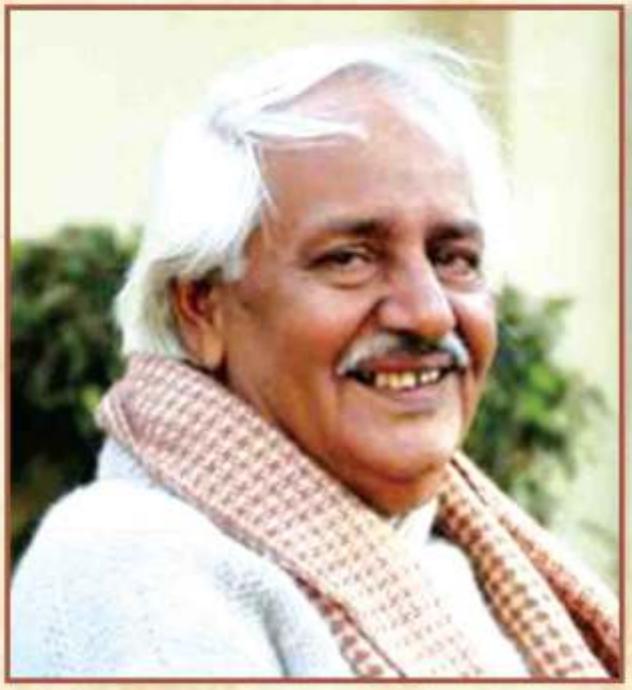

सागर सरहदी जी से लगभग दस सालों के बाद मिलना यानि फिर से नोक-झोंक, गप्पे तथा फिल्मों की यादों को ताजा करना था. विस्थापन का दंश और जिंदगी के तमाम उतार चढ़ावों के बीच भी अकेले जीवन यापन करनेवाले इस शख्स की ज़िंदादिली, सकारात्मकता के साथ-साथ सृजन की इच्छा देखते ही बनती है. हिन्दी फिल्मों की यात्रा में 'बाजार' फिल्म मिल के पत्थर के रूप में जानी जाती है. कलाकार अनेक कलाकृतियों का निर्माण करता है लेकिन सिर्फ एकाध कलाकृति ऐसी होती है जो उसकी पहचान बन जाती है. 'कभी कभी', 'सिलसिला', 'नूरी', 'चाँदनी', 'दीवाना', 'कहो ना प्यार है', 'दूसरा आदमी', 'फासले', 'अनुभव' आदि अनेक फिल्मों के लेखक, पटकथा लेखक, संवाद लेखक के रूप में तथा हमेशा अपने रोमांटिक संवादों के लिए जाने जानेवाले- सागर सरहदी जी ने 'बाजार' फिल्म क्या बनाई, हिन्दी सिनेमा के लिए मील का पत्थर बनने के साथ ही वह उनकी पहचान बन गयी. 'यूनियन सृजन' के 'फिल्मी दुनिया' विशेषांक के लिए उस बेबाक, रोमांटिक, कलंदर कलाकार के साथ हमारी यह बातचीत-

प्रश्न- सागर जी, अपने बचपन के बारे में कुछ बताइये, क्योंकि बचपन की यादें, संस्कार ही आदमी का निर्माण करते हैं.

उत्तर- मेरा जन्म पाकिस्तान के एबटाबाद में मौजूद बहुत ही सुंदर गाँव बफा में 11 मई, 1933 को हुआ. बफा बहुत ही शानदार गाँव था, जिसके इर्द गिर्द सिर्फ पानी ही पानी होता था. हम नदी के पानी में स्नान करते थे, पहाड़ों पर चढ़कर बर्फ लाते थे और घर में आकर कुल्फी बनाते थे. मैं पाँच साल का था, तब मेरी माँ गुजर गई. पापा ठेकेदार थे और रोबदार भी. मेरे बड़े भाई साहब एबटाबाद में नौकरी करते थे. मैं जब आठवीं या नौवीं में पढ़ रहा था तब विभाजन का मामला सामने आया. बड़े भाई के अंग्रेज़ बॉस ने कहा कि 'भाग जाओ वर्ना मारे जाओगे'. ट्रक में पूरा परिवार, संभव था उतना सामान लेकर हम कश्मीर पहुंचे फिर वहां से दिल्ली. कुछ पैसे थे, हम किंग्सवे कैंप में रहते थे. वहां से मेरे बड़े भाई कमाई के सिलसिले में मुंबई आए. मैं भी पढ़ाई करने के लिए मुंबई आ गया. पढ़ाई के दौरान ही मेरा झुकाव मार्कसिज़्म की ओर हुआ और फिर मैं पढ़ता गया. मैंने अंग्रेजी साहित्य से बी.ए. किया, क्योंकि दुनिया का सारा साहित्य अंग्रेजी में उपलब्ध है. एम.ए. मैं कर नहीं पाया, फेल हो गया. मुंबई में ही मैं 'प्रोग्रेसिव राइटर्स असोसिएशन' और 'इप्टा' से जुड़ गया. यहीं पर जाँ निसार अख्तर, इस्मत चुगताई, सरदार जाफरी, साहिर लुधियानवी, कैफी आजमी जैसे दिग्गजों ने मुझे प्रभावित किया. नाटक लिखना, उन्हें निर्देशित करना, मेरा शगल था लेकिन जो भी नाटक मैं प्रस्तुत करता, वह चल नहीं पाता. मेरी कमाई, इन नाटकों के मंचन में ही खत्म हो जाती थी. यहीं मुंबई में ही मैंने अपने मूल नाम 'गंगा सागर तलवार' से 'सागर सरहदी' नाम को अपनाया.

प्रश्न- मुंबई में आपकी जिंदगी कैसे चल रही थी?

उत्तर- मुंबई में हम रिफ़्यूजी कैंप में रहते थे फिर सायन कोलीबाड़ा में रहे. जिस तरह के हालात यहाँ मिले एक रिफ्यूजी के रूप में, उन्हें अच्छा नहीं कहा जा सकता, लेकिन जिंदगी चलने लगी. मेरा पढ़ना-लिखना जारी था. मैं बहुत पढ़ता था और मेरा लघु कहानियों, नाटकों के रूप में लेखन चलता रहता था, लेकिन उससे कोई फायदा नहीं होता था. पैसे नहीं मिल रहे थे इसलिए मैं फिल्मों की ओर मुड गया. क्योंकि जिंदगी जीने के लिए पैसों की जरूरत भी होती है. फिर फिल्मों के लिए लिखना शुरू किया. 'कभी-कभी' फिल्म का लेखन करने के बाद मैंने पीछे मुड़कर नहीं देखा. मेरे पास काम आता गया लेकिन जो भी कुछ मिल रहा था उसे मैंने स्वीकार नहीं किया बल्कि जो मुझे पसंद आया, उसे मैंने लिया. मार्कसिज़्म की बात तो दिमाग में थी इसलिए मैंने कमर्शियल सिनेमा को नकारा और फिर एक अलग तरह की फिल्म 'बाजार' को बनाने का निर्णय लिया.

प्रश्न– 'बाजार' को तो फिल्मी बाजार में नकारा गया?

उत्तर– 'बाजार' की कहानी मैंने अपने दोस्तों को, इप्टा में भी सुनाई. सबकी एक ही राय थी कि यह फिल्म चलेगी नहीं और तुम्हारा फ्लैट जरूर बिक जाएगा. लेकिन उनकी बातें इतिहास हो गईं. 'बाजार' ने अपना एक अलग मापदंड बनाया और सागर सरहदी को जिंदा रखा और साथ ही हिन्दी फिल्म उद्योग को एक नया पायदान दिया, नई ऊंचाई दी. 'बाजार' खूब चली.

प्रश्न– आप रोमांटिक फिल्मों के लिए जाने जाते हैं या यूं कहिए सागर सरहदी जैसा रोमांटिक कोई लिख नहीं सकता, ऐसा कहा जाता है, इस बारे में आप क्या कहेंगे?

उत्तर– सही कहा आपने. मैंने जो भी फिल्में लिखी हैं, वो रोमांटिकता से भरपूर है. 'कभी-कभी', 'सिलसिला', 'दूसरा आदमी', 'चाँदनी', 'फासले' आदि. सभी की कहानियाँ गरिमापूर्ण रहीं. यश चोपड़ा और मेरा साथ बहुत ही सफल रहा. मेरे बगैर उन्होंने 'चाँदनी' शुरू तो की लेकिन मनमुताबिक लेखन न मिलने के कारण बाद में शूटिंग बंद करने का निर्णय लिया. अंततः 'चाँदनी' को मैंने ही लिखा.

प्रश्न– इतनी रोमांटिकता ? क्या वजह हो सकती है? आपने तो शादी भी नहीं की है?

उत्तर– मैंने बहुत खूबसूरत जिंदगी जी है. जो चाहा, वह मैंने किया. मैंने इश्क किया, कई बार किया लेकिन कभी किसी लड़की को धोखा नहीं दिया, न ही उसे छोड़ा. लेकिन जब कोई प्यार करनेवाला दूसरे को छोडकर जाता है, तब उसकी हालत क्या होती है, उसका अंदाजा आप लगा सकती है. प्यार और दर्द दोनों यूं ही आपके साथ चलते हैं. मेरे प्यार और दर्द को आप मेरी फिल्मों के पर्दे पर देख सकते हैं. मेरे प्यार को मैंने खुद जिया है, महसूस किया है और लेखनी के जरिए पर्दे पर उतारा है. मैं फिल्मों को अपने बेइंतहा प्यार और दर्द से लिखता, बुनता हूँ. रही बात शादी की! मेरे पिता ने मेरी शादी तय की थी लेकिन उस वक्त शादी इसलिए नहीं करना चाहता था क्योंकि एक ही कमरे में पूरा परिवार रहता था. मेरे पास कुछ नहीं था, न घरदार, न नौकरी. कमरे में बाथरूम भी नहीं था. ऐसे में शादी करके कहाँ जाता? वह बात जो उस वक्त पीछे छूट गई, फिर छूट ही गई और मैं अपनी जिंदगी जीते गया. मैंने मुझे छोडने वाली लड़कियों की जिंदगी सँवारने में उनकी मदद की और साथ में अपनी जिंदगी भी अपने मन मुताबिक जी ली. मैंने अपनी जिंदगी में वो सब कुछ किया, जिसे मेरे दिल ने कहा. मैंने दारू पी, हरामखोरी की, शराब पीकर मैं गटर में गिरा, औरतों के पास गया लेकिन ये सब कुछ करने के पश्चात, जब लगा तब मैंने यह सब कुछ छोड़ भी दिया.

प्रश्न– आपके जमाने के फिल्म उद्योग और आज के फिल्म उद्योग में आप क्या अंतर पाते हैं?

उत्तर– पहले सिनेमा 'पैशन विथ प्रोफेशन' था अब सिर्फ बिजनेस, व्यापार बन गया है. आज की फिल्मों में विषय गायब रहता है. परम्पराएँ, गीत संगीत से भी सिनेमा काफी दूर चला गया है. राजनेता, अंडरवर्ल्ड, व्यापार और व्यापारीकरण इन सबके बीच वह खूबसूरत सिनेमा कहीं खो गया है. 'बाजार' के बाद मैंने 'चौसर' बनाई लेकिन अब तक उस फिल्म के लिए कोई खरीददार नहीं मिल पाया है. मुझे 'बाजार-2' बनानी है, लेकिन मेरे पास पैसा नहीं है. लोग प्यार, भावनाओं को भूलने लगे हैं. जिस कमर्शियलता को छोड़कर मैं भाग गया था, वही कमर्शियलता अब पूरे फिल्म उद्योग पर हावी हो गई है और सिनेमा इस कमर्शियलता के बोझ तले छटपटा रहा है.

प्रश्न– नयी ज़िंदगी की नई पीढ़ी के इन लोगों को आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर– सच कहूँ, इस नई पीढ़ी को पहले आदमी बनना होगा, इंसान बनना होगा. यह पीढ़ी बहुत सीमित दायरे में पल बढ़ रही है. इनके दायरे में पूरी दुनिया है लेकिन इनका दायरा इनकी हथेली जितने आकार के मोबाइल तक सीमित हो गया है. शायद पैदा होते ही इनकी माँ इनके हाथों में मोबाइल थमा देती है. किताबों को यह पीढ़ी हाथ नहीं लगाती, न ही अपने आस-पास आँख उठाकर देखती है. इनकी सुबह मोबाइल के साथ होती है और इनकी रात मोबाइल को हाथ में लेकर ही होती है और यह मोबाइल इस पीढ़ी को ले डूबेगा. मोबाइल बहुत आवश्यक चीज है, मैं मानता हूँ लेकिन इतनी भी आवश्यक नहीं है कि वह आपकी जिंदगी को चलाए.

प्रश्न– आपको इस माहौल से डिप्रेशन नहीं आता? आप अकेले रहते हो यह बात आपको दुःख नहीं देती?

उत्तर– नहीं, मैंने बहुत रोमांटिक, खूबसूरत जिंदगी जी है. यह जिंदगी बहुत प्रेरणादायी और सफल रही है और उस जिंदगी की वे यादें आज भी मुझे जगाती रहती हैं. मैं अकेला रहता हूँ लेकिन मुझे अकेलापन नहीं लगता. अकेले सोने में मुझे अवश्य डर लगता है लेकिन उसका उपाय मैंने ढूंढ लिया है. कोई साथी मेरा साथ देता रहता है. मेरा भतीजा, उनके बच्चे साथ देते हैं. यह बिगड़ा हुआ माहौल जिसमें रोमांटिकता गायब है और जिंदगी कमर्शियलता के हत्थे चढ़ती जा रही है, यह बात मुझे अवश्य तकलीफ देती है. सच कहूँ तो मुझे इस व्यवस्था के प्रति क्षोभ है. यह क्षोभ और गुस्सा मेरे दिल में बचपन से भरा पड़ा है. अचानक कुछ लोगों ने सालों पहले रातों रात सरहदें बाँट दी, हमारा गाँव, पहाड़, दरिया, हमें पूछे बिना हमसे छीन लिया गया. वहाँ की मिट्टी, पत्थरों, बागों से हमें बेदखल किया गया. मुझे बहुत याद आती है, मेरे उस गाँव की! हमारी जमीन, इन्सानों को बांटने का हक इन सियासतदानों को किसने दिया. यह ठीक है कि हमने अपने भीतर नई कोपलें पैदा की और हम यहाँ भी रच बस गए और तमाम दुख दर्द झेलकर यहाँ स्थापित भी हो गए लेकिन हम अपने गाँव में वापस नहीं जा सकते, वहाँ रह नहीं सकते, इसका निर्णय कौन करेगा? मैं एक बार ही सही, मेरे उस बफा गाँव में, मेरे दरियासर में जाना चाहता हूँ. जिंदगी रहते मुझे अपने दरियासर को एक बार देखना है.

यह बात कहते हुए सरहदी जी की आँखों में एक गीलापन आ गया था. उनकी आवाज भी अपनी सधी हुई लय से हिल गई थी. यह दर्द सही मायनों में उनकी भूरी सी आँखों में झिलमिला रहा था. आज 84 साल की उम्र में नयी फिल्म को लेकर एक बच्चे जैसे उत्साह से बात करनेवाले इस शख्स ने जिंदगी के कितने उतार-चढ़ाव को देखा होगा और कितनी मस्ती से अपनी जिंदगी बिताई होगी, इसका अंदाजा आप लगा सकते हैं. लेकिन अपनी मिट्टी से बिछड़ने का उनका गम और उस गम की गहराई को आप भी महसूस करते हैं, जब सागर जी अपने गाँव की यादों में लगातार बात करते हुए समय को भूल जाते हैं.

सागर सरहदी जैसे रोमांटिक फिल्म लेखक को यूं इस तरह मिलकर लौटते हुए उनकी आँखें, मेरे सामने वही सवाल लेकर उपस्थित होती हैं कि वे अपने गाँव कब जाएंगे, इसका निर्णय कौन करेगा? लेकिन मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं था और मेरी गर्दन झुकी हुई थी.

डॉ. सुलभा कोरे
केंद्रीय कार्यालय, मुंबई

बॉलीवुड
हिंदी फिल्म उद्योग - यात्रा

हिंदी सिनेमा जिसे बॉलीवुड के नाम से भी जाना जाता है, मुख्यतः मुंबई शहर (पूर्व नाम बम्बई) में बसा है. बॉलीवुड नाम अंग्रेजी सिनेमा उद्योग हॉलीवुड के तर्ज पर रखा गया है. हॉलीवुड दुनिया की सबसे पुरानी और सबसे बड़ी फिल्म इंडस्ट्री है.

गली में नुक्कड़ नाटक, चौपाल, रेडिओ, ग्रामीण संगीत से बढ़कर एक दुनिया आई जिसे सिनेमा का नाम दिया गया. इसने आते ही मनोरंजन के जगत में एक अलग सी हलचल मचा दी. पूर्व में सिनेमा इतना विकसित नहीं था और उसे लोग ज्यादा पसंद भी नहीं करते थे लेकिन समय के साथ इसका एक अलग ही रूप देखने को मिला, बड़े से पर्दे पर गीत–संगीत और अभिनय का विशाल रूप लोगों के मनोरंजन का बड़ा साधन बन गया.

भारत में सभी भाषाओं को मिलाकर प्रति वर्ष लगभग 2000 फिल्में बनती है. भारतीय सिनेमा के अंतर्गत भारत के विभिन्न भागों और भाषाओं में बनने वाली फिल्में आती हैं, जिनमें आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, असम, बिहार, उत्तरप्रदेश, गुजरात, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, झारखंड, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, ओड़िशा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और बॉलीवुड शामिल हैं.

'भारतीय सिनेमा के जनक' के रूप में दादासाहब फाल्के ने 'राजा हरिश्चंद्र' – मूक फिल्म का निर्माण वर्ष 1913 में किया जो भारत की पहली पूरी अवधि की फीचर फिल्म थी. इस फिल्म की व्यावसायिक सफलता ने अन्य फिल्मों के निर्माण के लिए एक उत्साह जनक माहौल प्रदान किया.

शुरुआती मूक सिनेमा में आवाज़ नहीं होती थी. दर्शक सिर्फ चलता–फिरता चित्र देख सकते थे. फिर आवाज़ के साथ फिल्में बनने लगी. वर्ष 1931 में भारतीय सिनेमा की पहली सवाक फिल्म थी 'आलम आरा'. चित्र के साथ ध्वनि के मिश्रण से इस क्षेत्र में क्रांति आई. बाद में फिल्मों में गीत–संगीत का दौर शुरू हुआ. सिनेमाघरों का फैलाव महानगरों से लेकर छोटे–बड़े शहरों के बाद गांवों में भी हुआ. वर्ष 1937 में भारतीय सिनेमा की पहली रंगीन फिल्म 'किशन कन्हैया' के बाद रंगीन फिल्मों का दौर शुरू हुआ और भारतीय सिनेमा को नई उंचाइयों पर ले गया.

बॉलीवुड में भी शुरुआती दौर में धार्मिक फिल्में बनी. देश की जनता भी यही देखना चाहती थी. क्योंकि उस समय नैतिकता और धर्म कर्म का ही बोल बाला था. फिर ऐतिहासिक फिल्में आने लगी और खूब सराही गयी. 'मुगले आजम' ने नए कीर्तिमान स्थापित किए. देश जब गुलाम था, तब देश भक्ति की फिल्में नहीं बनती थी. लेकिन आजादी के बाद देश भक्ति पर फिल्में बनने लगी. अगले कुछ दशकों में बहुत सी देश भक्ति आधारित फिल्में बनी और खूब चली भी!

नये समाज के साथ सामाजिक विषयों पर बनने वाली फिल्मों का दौर चला. यूँ तो यदा कदा समाज सुधारकों और विचारकों पर भी फिल्में बनती रहती थी, पर उसका नायक पूर्व स्थापित समाज सुधारक और विचारक का ही रोल निभाता था. 'दो आँखें बारह हाथ', 'जागृती', 'अछूत कन्या', 'बंदिनी' जैसी फिल्मों का नायक या नायिका एक साधारण व्यक्ति होता था. इन सभी फिल्मों ने आम जनमानस की सोच में बदलाव का काम भी किया जो बड़े विचारक, समाज सुधारक नहीं कर सके वह काम इन फिल्मों ने कर दिखाया. छुआछूत, सामाजिक भेदभाव, जात पात के खिलाफ इन फिल्मों में कोई न कोई संदेश जरूर होता था. इससे युवा पीढ़ी बहुत प्रभावित हुई और उनमें एक अलख जग गया. समाज पर इन फिल्मों का इतना गहरा प्रभाव पड़ने लगा कि नयी पीढ़ी वही करने लगे जो फिल्मों में होता था और यह सिलसिला कमोबेश आज भी जारी है. आज की पीढ़ी फैशन में नायक, नायिकाओं का अनुसरण कर रही हैं. यही नहीं, जिस प्रकार से आज कल की फिल्मों की कहानी होती है, संदेश होते हैं, उन्हें भी अपने विचारों में यह पीढ़ी सम्मिलित कर रही है. रोमांटिक फिल्मों के दौर में तो फिल्मों का अनुकरण कर प्रेम करने के, वैसे तरीके नयी पीढ़ी ने अपनाये.

लोग सिनेमा से अच्छी बातें सीखते हैं वहीं दूसरी ओर इसके बुरे प्रभाव से भी अछूते नहीं रहते. हिंदी सिनेमा भारतीय समाज के आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक नीतियों, मूल्यों और संवेदनाओं का ऐसा इंद्रधनुष है, जिसमें भारतीय समाज की विविधता उसकी सामाजिक चेतना के साथ सामने आती है. भारतीय समाज का हर रंग यहाँ मौजूद हैं.

अगर आप 60 से 80 के दशक की फिल्मों को देखेंगे तो पाएंगे कि फिल्म की नायिका अधिकतर साड़ी या सूट में होती थी. उस समय खलनायिकाएं ही स्कर्ट, स्लैक्स, और अंग प्रदर्शन करने वाले कपड़े पहनती थी. बाद की फिल्मों की नायिकाओ ने यह भेद मिटा दिया. अब आप कपड़े देख कर नहीं पहचान सकते की यह नायिका है या खलनायिका! अब यही कपड़े आम महिलाएँ भी पहन रही हैं. कहने का अर्थ यह है कि फिल्में आम जन जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं.

आज भारतीय सिनेमा उद्योग विश्व सिनेमा से प्रतिस्पर्धा कर रहा है. पहले जहां एक सिनेमाघर में एक समय, एक ही फिल्म मनोरंजन के लिए प्रदर्शित की जाती थी, वहीं आज मल्टीप्लेक्स के जरिए एक साथ कई सारी फिल्में प्रदर्शित की जा सकती हैं. फिल्म बनाने के लिए अनेक प्रकार की आधुनिक मशीनरी का प्रयोग होता है, बड़े–बड़े कैमरे, स्टुडियो, कंप्यूटर, संगीत के उपकरण आदि. फिल्म बनाने में हजारो लोगों का सहयोग भी लेना पड़ता है, जो रोजगार के साधन भी उपलब्ध करवाता है.

उद्योग अर्थात कारोबार, व्यवसाय! जब हम व्यवसाय, कारोबार की बात करते हैं तो उनके साथ अन्य बातें भी जुड़ती जाती है. बॉलीवुड और अंडरवर्ल्ड का रिश्ता भी कई बार चर्चाओं में रहा है, अंडरवर्ल्ड का दबदबा देश में गैर कानूनी कामों के अलावा बॉलीवुड इंडस्ट्री में भी रहा है. लंबे समय तक अंडरवर्ल्ड का पैसा बॉलीवुड का हिस्सा रहा. बॉलीवुड पर अपना दबदबा हासिल करने के लिए अंडरवर्ल्ड ने धमकी देना, जबरन वसूली यहाँ

तक कि हत्या से भी परहेज नहीं किया. अंडरवर्ल्ड ने बॉलीवुड में डर कायम रखने के लिए गुलशन कुमार जैसे कैसेट किंग की जान तक ले ली और कई कलाकार जैसे अनुपम खेर, राकेश रोशन, ऋतिक रोशन आदि को पुलिस से सुरक्षा लेनी पड़ी. लोगों को पता चलने लगा कि कलाकारों का काम सिर्फ हुनर और सफलता से नहीं, बल्कि अंडरवर्ल्ड के रिश्तों से भी चलता है. अंडरवर्ल्ड की पार्टियां फिल्मी सितारों से चमकने लगी. अंडरवर्ल्ड को बॉलीवुड की कमाई और जगमगाती शोहरत दोनों में हिस्सेदारी चाहिए थी. परिणामस्वरूप वह कलाकार और किरदार ही नहीं, बल्कि कई बार कहानियों में भी दख़लअंदाज़ी करने लगा. यह दौर लंबे समय तक कायम रहा और आज भी कम-ज्यादा रुप में ही सही लेकिन जारी है.

फिल्मों को उद्योग का दर्जा मिला और गिने चुने बैंक, जैसे कि भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आईडीबीआई) ने फिल्मों को वित्तपोषित करना शुरू किया. धीरे-धीरे फिल्मों के लिए कमाई के नए रास्ते खुलने लगे. आरंभिक दौर में सिनेमा में सबको निश्चित मासिक वेतन पर काम करना पड़ता था. धीरे-धीरे कुछ निर्माताओं ने स्टुडियो को किराए पर लेना शुरू किया, फिर कलाकारों और अन्य लोगों को ठेके पर लेना शुरू हुआ. समय के साथ फिल्मों का बजट बढ़ा और स्टार अभिनेताओं की आमदनी भी बढ़ती गयी. कई अभिनेता एक साथ 3-4 फिल्मों में काम करने लगे.

समय के साथ भारतीय सिनेमा भी बदलता गया. निर्माता-निर्देशक, संगीतकार, नायक, नायिका, तकनीशियन, कैमरामन, लेखक तथा अन्य छोटे-बड़े कलाकार और तकनीकें बदलती रही और सिनेमा का स्वरूप भी बदलता रहा. जहां पहले बहुत कम बजट में फिल्मों का निर्माण होता था, वहीं आज के दौर में फिल्म निर्माण में करोड़ों रुपये लगाए जा रहे हैं. पहले जहां फिल्म लाखों का व्यवसाय करती थी वहीं आज फिल्मों ने करोड़ों में व्यवसाय करना शुरू कर दिया है. आज एक फिल्म का व्यवसाय 100 करोड़, 200 करोड़, 500 करोड़, 1000 करोड़ तक बढ़ गया है. हिंदी सिनेमा की सफलता के मापदंड अनेक हैं. गाने, बेहतरीन और हिट संगीत, सेक्स, हिंसा, मेलोड्रामा, विदेशी लोकेशन, आइटम सॉन्ग, प्रसिद्ध हीरो एवं हीरोइन आदि इनमें से कोई एकाध/अनेक विशेषताएं फिल्म को सफल बनाती हैं, यह मान्यता अब भी उतनी दृढ़ और कायम है. इसलिए आज के युग में फिल्मों की सफलता का पैमाना उनकी कमाई से होने लगा है.

21वीं सदी में फिल्म उद्योग ने कॉर्पोरेट स्वरूप ले लिया, अब फिल्म स्टुडियों, कंपनियों की तरह कार्य करने लगे. फिल्मों की मार्केटिंग होने लगी और आय के स्त्रोत भी बढ़ने लगे. आज भारतीय फिल्म उद्योग में 1000 से अधिक फिल्म निर्माण कंपनियाँ है, यशराज फिल्म, रेड चिल्ली एंटरटेनमेंट, धर्मा प्रॉडक्शन, एरॉस इंटरनेशनल, बालाजी मोशन पिक्चर, यूटीवी मोशन पिक्चर, रिलायंस एंटरटेनमेंट आदि कुछ महत्वपूर्ण कंपनियाँ हैं. फिल्म का बीमा करने का चलन भारतीय फिल्म उद्योग में सुभाष घई की फिल्म ताल' से शुरू हुआ. हालांकि यह चलन धीमी गति से अपनाया जा रहा है.

फिल्म प्रदर्शित होने के बाद जब ज्यादा या बिल्कुल चलती नहीं हैं, तब इस पूरी प्रक्रिया में मौजूद निर्माता या डिस्ट्रीब्यूटर को काफी हानि वहन करनी पड़ती है, लेकिन यदि एकाध व्यक्ति या संस्था सभी काम स्वयं करती है तो हानि को कवर करने के मौके भी मिलते है. जैसे कि, निर्माण की हानि डिस्ट्रीब्यूशन में, डिस्ट्रीब्यूशन की हानि प्रदर्शन में, प्रदर्शन की वित्तपोषण में और वित्तपोषण की डिस्ट्रीब्यूशन में ! इस तरह से चक्कर चलता रहता है.

दिनोंदिन फिल्म निर्माण का काम अधिक खर्चीला होने के कारण फिल्में समसामयिक और तदनुषंगी होने का सिलसिला कम होने लगा है. बड़े बजट की फिल्में, बड़े स्टारों को लेकर बनाना, उन्हें लकदक और चमक के साथ पेश कर ओवरसीज दर्शकों को आकृष्ट करने का एक नया सिलसिला अब कुछ वर्षों से हिंदी फिल्मों में चल रहा है. दूसरी पीढ़ी के फिल्म निर्देशक जैसे आदित्य चोपड़ा, सूरज बड़जात्या, करण जौहर आदि ने इस दिशा में अपनी अपनी मुहर जमायी हैं.

कुछ हिंदी फिल्मों और कंपनियों ने अपना एक ओवरसीज मार्केट तैयार किया है. अनिवासी भारतीयों को ध्यान में रखते हुए अब हिंदी फिल्मों का निर्माण किया जाने लगा है. ये फिल्में यदि देशी मार्केट में नहीं चलती हैं तब भी फिल्म निर्माणकर्ता को कोई तनाव नहीं होता क्योंकि इन फिल्मों में जिन बातों, अपीलों का उपयोग किया जाता है, वे अनिवासी भारतीयों या फिर ओवरसीज दर्शकों की अभिरुचि तथा उनकी पसंद का ख्याल रखते हुए किया गया होता है. परिणामस्वरूप ये फिल्में विदेशों में चल निकलती हैं तथा फिल्म निर्माता का पूरा पैसा उसे लौटा देती है और लाभ के नए रिकॉर्ड कायम करती हैं.

फिल्म एक ऐसा माध्यम है जो किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं बनाई जाती है, बल्कि हर वर्ग के व्यक्ति के लिए बनाई जाती है. जैसे- अमीर, गरीब, शिक्षित, अशिक्षित आदि सभी बड़े ही चाव से फिल्में देखते है. सच्चाई तो यह है कि फिल्मों के दर्शक का एक बड़ा हिस्सा साधारण समझे जाने वाले मजदूर, ठेले वाले, रिक्शा वाले, ऑटो चालक, तांगे वाले, घर-ऑफिस में काम करने वाले सेवा कर्मी, नौकर, ड्राईवर आदि हैं. फिल्म निर्देशक, निर्माता, दर्शक वर्ग की नब्ज को पहचानता है, तभी तो वह अपनी फिल्मों में समाज के हर वर्ग के व्यक्ति की भाषा का प्रयोग करता है. तभी तो कम बजट की फिल्में भी अच्छी कमाई करती हैं, क्योंकि हर वर्ग का व्यक्ति ऐसी फिल्मों में कहीं न कहीं अपने आप को तलाशता रहता है.

भारतीय फिल्म उद्योग दुनिया के सबसे बड़े बाज़ारों में से एक है, यहाँ सभी तबके के लोग साथ मिलकर काम करते हैं और भारतीय फिल्म उद्योग के विकास के साथ रोजगार के अवसर भी उत्पन्न हो रहे हैं. फिल्म इंडस्ट्री सिर्फ कलाकारों के लिए ही नहीं हैं, यहाँ लाखों युवाओं को रोजगार भी मिला है. आज लघु फिल्मों, धारावाहिक, वेब सिरीज़, विज्ञापनों आदि में रोजगार की असीम संभावनाएं है. फिल्म उद्योग युवक और युवतियों के लिए प्रगति के नित नए अवसर प्रदान कर रहा है. हाल के वर्षों में तकनीकी और ग्राफिक्स का फिल्मों में प्रयोग बढ़ा है और इसके साथ रोजगार की और संभावनाएं भी बढ़ी हैं.

फिल्में समाज का दर्पण होती है या समाज फिल्मों से प्रभावित होता है, यह चर्चा का विषय भले ही होता हो, लेकिन यह लोगों को सपने दिखाने का एक जरिया है. फिल्मों ने जनता का केवल मनोरंजन ही नहीं किया, जनता का प्रबोधन भी किया है, जनता को चेताया, सत्य-असत्य का परिचय कराया तथा सत्य के मार्ग पर चलने का संदेश भी दिया. समाज को संदेश देने के लिए शोषितों के मन में क्रांति की भावना जगाने के लिए फिल्में एक सशक्त माध्यम था और है. अनेक फ़िल्मकारों ने फिल्मों के सहारे अपने विचार अपनी भावनाएं, अपनी संवेदनाएं जन-जन तक पहुंचाई है. आज पैसा कमाने की होड़ में शायद हम भूल गए हैं कि फिल्म उद्योग का जन्म सिर्फ मनोरंजन परोस कर पैसा कमाने के लिए नहीं हुआ है बल्कि सामाजिक कुरीतियों, बुराइयों को बदलने के लिए सामाजिक उद्देश्य के लिए हुआ है. निश्चित रूप से फिल्में समाज को एक बेहतर और एक नई सोच दे सकती है. साथ ही एक उद्योग के रूप में इसकी महत्ता को हम नकार नहीं सकते.

सुधीर प्रसाद
केंद्रीय कार्यालय, मुंबई

टॉलीवुड (कोलकाता) बांग्ला फिल्मों की यात्रा

बंगाली (बांग्ला भाषी) सिनेमा को टॉलीवुड के नाम से भी जाना जाता है. इस नाम का कारण बंगाली फिल्म उद्योग का दक्षिण कोलकाता के टालीगंज क्षेत्र में स्थापित होना है. हैदराबाद में आधारित तेलगु सिनेमा को भी टॉलीवुड नाम से जाना जाता है परन्तु बंगाली सिनेमा का टॉलीवुड नाम अधिक प्रचलित है.

भारतीय सिनेमा की प्रगति तथा इतिहास में टॉलीवुड का महत्वपूर्ण योगदान है. इसका प्रमुख कारण बंगाल की समृद्ध कला एवं संस्कृति है. टॉलीवुड अपने समानान्तर सिनेमा के लिए भी प्रसिद्ध है.

1920 के दशक में बंगाल में बायोस्कोप की शुरुआत हुई. हीरा लाल सेन और धीरेन्द्र नाथ गांगुली, बांग्ला सिनेमा और देश के शुरुआती निर्माता निर्देशकों में से एक थे. प्रथमेश बरुआ और देबकी बोस शुरुआती बांग्ला सिनेमा के लोकप्रिय अभिनेता और अभिनेत्री थे.

प्रथम हिन्दी अवाक फीचर फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' 1913 में रिलीज़ हुई और इसके 6 वर्ष के अंतराल में 08 नवंबर 1919 को प्रथम बांग्ला फीचर फिल्म 'बिल्वा मंगल' रिलीज़ हुई. हालांकि अप्रैल 1931 में रिलीज़ हुई 'जामाई षष्ठी' प्रथम बांग्ला फिल्म थी. दिसंबर 1931 में 'देना पाउना' भी रिलीज़ हुई. इसी दौर में 1931 में ही पहली हिन्दी फिल्म 'आलम आरा' भी रिलीज़ हुई थी. बांग्ला सिनेमा और हिन्दी सिनेमा साथ-साथ प्रगति कर रहे थे.

1932 में विल्फोर्ड इ. डेमिंग, जोकि फिल्म निर्माण से जुड़े हुए थे, ने टॉलीगंज स्थित बंगाली सिनेमा को टॉलीवुड नाम दिया. इसके बाद बांग्ला सिनेमा टॉलीवुड में परिवर्तित हो गया. कला की धरती बंगाल में गीत, संगीत, साहित्य तथा अभिनेताओं के साथ-साथ कलाकारों की कभी भी कमी नहीं रही, इस कारण से बंगाल में सिनेमा को स्थापित होने के लिये अनुकूल परिवेश मिला.

फिर आया टॉलीवुड का स्वर्णिम युग, जिसकी शुरुआत 1952 में हुई. यह युग 1975 तक रहा. सत्यजीत रे, मृणाल सेन और ऋत्विक घटक की त्रिमूर्ति ने टॉलीवुड को न केवल भारतीय सिनेमा बल्कि विश्व सिनेमा के शिखर तक पहुंचाया. तीनों महान कलाकारों की एक से बढ़कर एक क्लासिक फिल्में आईं. यह कहा जा सकता है कि भारत में समानान्तर सिनेमा बंगाल की ही देन है. गंभीर तथा सामाजिक विषयों पर आधारित फिल्मों का निर्माण टॉलीवुड की विशेषता रहा है. समृद्ध बांग्ला साहित्य से बांग्ला फिल्मों की अलग पहचान बनाने में सहायता मिली. गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर, शरतचंद्र चट्टर्जी, ताराशंकर बंदोपाध्याय, विभूतिभूषण बंदोपाध्याय और सुनील गंगोपाध्याय जैसे महान लेखकों का भी समृद्ध बांग्ला सिनेमा के निर्माण में योगदान रहा है.

सत्यजित रे को नव-यथार्थवादी निर्देशक के रूप मे सर्वाधिक लोकप्रियता मिली. सत्यजीत रे द्वारा निर्देशित 'पथेर पांचाली' (1955), 'अपरजीतों' (1956) तथा 'अपू संसार' (1959) सर्वकालीन सर्वोत्तम फिल्मों की श्रेणी में आती है. ये तीनों फिल्में द अप्पू ट्राईलोजी के नाम से जानी जाती है.

मृणाल सेन को मार्क्सवादी कलाकार के रूप में पहचान मिली. इनको भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति तथा कई पुरस्कार प्राप्त हुए.

ऋत्विक घटक एफ़टीआईआई (फिल्म एंड टेलिविजन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया), पुणे में प्रोफेसर थे. 1952 में बनी नागरिक संभवतः शुरुआती बांग्ला आर्ट फिल्मों में से एक थी. यह फिल्म सत्यजित रे की पथेर पांचाली से 3 वर्ष पहले बनी थी. परंतु उनके मृत्यु के पश्चात (1977) ही उनकी फिल्मों को पहचान मिल पायी.

'गुपी गेन बाघा बेन' (1969) को देश की शुरुआती फैंटेसी एडवेंचरस फिल्मों में से एक माना जाता है. सोनार केल्ला एक डिटेक्टिव फिल्म थी. इन फिल्मों के अलावा नागरिक (1952) , हरणों सुर (1957), जलसाघर (1958), अजान्त्रिक (1958), बारी थेके पलीये (1959), नील आकाशेर नीचे (1959), देवदास, देवी (1960), मेघे ढाका तारे (1960), चारुलता (1964), नायक (1966) और अरेण्यर दिन रात्री (1970) विशेष रूप से उल्लेखनीय फिल्में थी.

यही वह दौर था जब महानायक उत्तम कुमार तथा सुचित्रा सेन की जोड़ी की लोकप्रियता ने टॉलीवुड को नए आयाम दिये. ये दोनों बंगाली सिनेमा के सर्वकालीन सबसे लोकप्रिय कलाकार माने जाते हैं. साबित्री चटर्जी, सुमित्रा देवी और सौमित्र चटर्जी इस समय के अन्य लोकप्रिय कलाकार थे.

साठ के दशक में शर्मिला टैगोर, अपर्णा सेन, सुप्रिया देवी, संध्या राय, उत्पल दत्त और मदबाई मुखर्जी जैसे कई प्रतिभावान अभिनेताओं और

अभिनेत्रियों ने कदम रखा. बंगाली फिल्म संगीत को पंकज मलिक, राइचन्द बोराल, के.सी.डे तथा हेमन्त कुमार इत्यादि ने संवारा. कई कलाकारों ने कालांतर में बॉलीवुड में भी अपनी प्रतिभा से प्रसिद्धि हासिल की.

आधुनिक टॉलीवुड सिनेमा की शुरुआत 1990 के दशक से हुई, जब ऋतुपर्णो घोष, अपर्णा सेन तथा गौतम घोष जैसे निर्देशक आए. गौतम घोष की 'अंतरजली जात्रा' (1987) यह फिल्म सामाजिक विसंगतियों का चित्रण था. ऋतुपर्णा घोष ने 'हिरेर अंगी' (1992), रबीन्द्रनाथ टेगौर के उपन्यास पर आधारित 'चोखेर बाली' (2003) तथा 'सोब चोरित्रों काल्पोनिक' (2009), अपर्णा सेन की 'दी जापनीज़ वाईफ' (2010), अनिरुद्ध रायचौधरी की 'अनुरानन' (2006) और 'अंतहीन' (2009) तथा अनिक दत्ता की 'भूतेर भबीश्यत' (2012) लीक से हट कर बनी चर्चित फिल्में हैं.

बॉलीवुड यानि हिन्दी सिनेमा के विकास में टॉलीवुड की अहम भूमिका रही है. कई बांग्ला भाषी कलाकारों ने बॉलीवुड के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है. 1953 में आई बिमल राय की 'दो बीघा जमीन' एक कलात्मक (आर्ट) फिल्म थी जिसे वाणिज्यिक सफलता भी मिली. हृषीकेश मुखर्जी को यथार्थवादी फ़िल्मकार के रूप में पहचान मिली, जिन्होंने मध्यम वर्ग से जुड़े विषयों पर सफल हिन्दी फिल्में बनाई, बासु चैटर्जी ने भी इसी प्रकार की फिल्मों का निर्माण किया. बासु भट्टाचार्य तथा शक्ति सामंत ने भी कई सफल हिन्दी फिल्में बनाई. बंगाल ने हिन्दी सिनेमा के विभिन्न पहलूओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है. वह चाहे फिल्म निर्माण का क्षेत्र हो या कहानी, संगीत, गायन, अभिनय या फिल्म तकनीकी का.

बिमल राय, सत्यजित रे, मृणाल सेन, हृषीकेश मुखर्जी, बासु चैटर्जी, बासू भट्टाचार्य, तपन सिन्हा, सुजीत सरकार, अनुराग बसु, दिबाकर बनर्जी, सुजॉय घोष, प्रदीप सरकार, अशोक कुमार, देविका रानी, प्रदीप कुमार, शर्मिला टेगौर, जॉय मुखर्जी, जया बच्चन, मिथुन चक्रबर्ती, रीना राय, काजोल, रानी मुखर्जी, सुष्मिता सेन, कोंकणा सेन शर्मा, राहुल बोस, रोनित राय, किशोर कुमार, मन्नाडे, कुमार शानू, अरजित सिंह, हेमंत कुमार, एस डी बर्मन, आर. डी बर्मन और बप्पी लाहिरी आदि कलाकारों ने टॉलीवुड और बॉलीवुड में भी अपने योगदान से एक बेहतरीन समा बांधा है. ये दोनों फिल्म उद्योग के प्रमुख कलाकार रहे हैं.

बंगाली सिनेमा ने कई प्रयोग किए तथा यह सार्थक (समानान्तर) तथा वाणिज्यिक (कमर्शियल) फिल्मों का यह एक बेजोड़ संगम है. भारतीय सिनेमा की कहानी टॉलीवुड के बिना अधूरी है.

गिरीश जोशी
क्षे.का. कोलकाता

कुछ दिलचस्प बातें फिल्मी दुनिया के बारे में

- बॉलीवुड की प्रथम (मूक) फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' थी जो सन् 1913 में आई थी.
- 'लगान' फिल्म में सबसे ज्यादा ब्रिटिश कलाकारों ने अभिनय किया था.
- 'आलम आरा', पहली सवाक फिल्म थी.
- 'गजनी' पहली बॉलीवुड फिल्म थी जिसने 100 करोड़ कमाए थे.
- फिल्म 'शोले' में गब्बर सिंह के किरदार के लिए पहले डैनी का चयन किया गया था.
- अभिनेत्री करीना कपूर खान ने फिल्म 'हिरोइन' में 300 से अधिक पोशाक पहनी थी और उनकी यह वार्डरोब सबसे महंगी थी.
- राज कपूर अभिनीत फिल्म 'मेरा नाम जोकर' में दो मध्यांतर (interval) थे.
- फिल्म 'कहो ना प्यार है' सबसे ज्यादा अवार्ड जीतने वाली फिल्म थी. इस फिल्म ने कुल 92 अवार्डस् जीते थे जिसके लिए इसका नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड में भी दर्ज किया गया था.
- 'बॉलीवुड' शब्द सन् 1970 से प्रचलन में आया था.
- प्रथम हिन्दी रंगीन फिल्म 'किसान कन्या' थी जो सन् 1937 में आई थी.
- हिन्दी सिनेमा के स्वर्णिम वर्ष सन् 1940 से 1960 को कहा गया है.
- फिल्म 'इंद्र सभा' में कुल 71 गाने थे जो अभी तक किसी भी बॉलीवुड फिल्म के सबसे ज्यादा गाने हैं.
- 2011 में बनी फिल्म 'रा-वन' की लागत 27 मिलियन डॉलर थी जो बॉलीवुड की सबसे महंगी फिल्मों में से एक थी.
- दीपिका पादुकोण एकमात्र ऐसी अभिनेत्री है जिनकी फिल्म 'पद्मावत' 500 करोड़ के क्लब में शामिल है.
- बॉलीवुड प्रति वर्ष लगभग 1000 फिल्मों का निर्माण करता है जो हॉलीवुड फिल्मों से कही ज्यादा है.
- भारतीय फिल्म उद्योग की प्रथम महिला निर्माता श्रीमति फातिमा बेगम थीं, उन्होंने फिल्म 'बुलबुल ए पाकिस्तान' का सन् 1926 में निर्माण किया था.
- शाहरुख खान विश्व के तीसरे सबसे अमीर अभिनेता हैं, उनकी कुल नेटवर्थ 600 मिलियन डॉलर है.
- सदी के महानायक अमिताभ बच्चन अपने दोनों हाथों से लिख सकते हैं.
- 'तमस' फिल्म की अवधि 4 घंटे 34 मिनट थी और यह रनिंग टाइम के अनुसार हिन्दी की सबसे लंबी फिल्म है.
- 'जोधा अकबर' फिल्म 29 देशों में रिलीज हुई थी.
- हिन्दी सिनेमा में बॉलीवुड निर्देशक 'यश चोपड़ा' को 'रोमांस का गॉडफादर' कहा जाता है.
- 'दृश्यम' फिल्म को 10 नेशनल अवार्डस् से सम्मानित किया गया था.
- बॉलीवुड की सबसे छोटी फिल्म 'मेरे डैड की मारुति' थी जिसकी अवधि 1 घंटा 42 मिनट थी.

डिंपल कौर
क्षे. का., आगरा

दक्षिण भारतीय फिल्में (मलयालम/तमिल/तेलुगू/कन्नड़)

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में सिनेमा ने भारत में अपनी उपस्थिति दर्ज की, तब देश प्रमुख सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों के लिए तैयार था. भारतीय समाज जो सदियों से अपरिवर्तित रहा था, तकनीकी नवाचारों के सामने बदल रहा था. कारें, हवाई जहाज, रेडियो प्रसारण और फोटोग्राफ रिकॉर्ड हाल ही में पेश किए गए थे, जिससे उन्हें नए स्टेटस प्रतीकों के साथ-साथ विदेशी विचारों तक पहुंच प्राप्त हुई. इसके साथ ही प्रेस जनता की राय के गठन में एक नई ताकत बन गया था क्योंकि तमिल में क्षेत्रीय भाषा समाचार पत्र देश भर में प्रकाशित किए जा रहे थे. इसके बाद के दशकों में एक प्रमुख सामाजिक-सांस्कृतिक बल के आयामों को समाज स्वीकार करने वाला था.

जब दक्षिण भारत में सिनेमा दिखाया जाने लगा तो एक समान भूमिका में कई बातें सामने आने लगीं. सबसे पहले दक्षिण भारतीय सिनेमा ने एक ऐसी जगह बनाई जिसमें सभी लोग इकट्ठा हो सकें और टिकट खरीदकर मनोरंजन कर सकें. ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था. जबकि परंपरागत मनोरंजन के रूपों और मनोरंजक सुविधाओं ने कठोर सोच वाले समाज के विशेष वर्गों को पूरा किया था. सिनेमा एक मनोरंजन का रूप है जिसमें कोई भी सहभागिता दे सकता है और उसका मजा ले सकता है. यह जाति और वर्ग की सोच से परे था.

नृत्य, संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला और साहित्य के विपरीत, सिनेमा भारत के लिए स्वदेशी नहीं है. यह औपनिवेशिक शासन की एक शताब्दी के बाद दृश्य कला और कथा कला के एक नए यांत्रिक माध्यम के रूप में आया था. श्रोताओं के हिस्से पर साक्षरता की आवश्यकता को छोड़कर, सिनेमा मुख्य रूप से अशिक्षित लोगों के बीच पहुंचा. इसने बड़े पैमाने पर अनुभव की एक नए दुनिया को खोला, जिसका अनुभव गरीबी और यात्रा पर प्रतिबंधों से काफी सीमित था. इस तरह के अन्य कोई माध्यम पहले सामने नहीं आये थे. फिल्मों ने राष्ट्रवाद, सामाजिक सुधारों और युद्ध से संबंधित मामलों पर जनता की राय को प्रभावित करना शुरू किया. मद्रास में 1900 तक नियमित वाणिज्यिक सिनेमा कार्यक्रम शुरू हुए. और जल्द ही स्थायी सिनेमा घरों का निर्माण किया गया. 1912 में पहली भारतीय फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बॉम्बे में बनाई गई थी और 1916 में पहली दक्षिण भारतीय फीचर फिल्म 'किचकवधम्' (किचकान का विनाश) मद्रास में बनाई गई थी. दोनों प्रसिद्ध मिथकों पर आधारित थीं. मद्रास, इंडिया फिल्म कंपनी का पहला स्टुडियो 1916 में स्थापित किया गया था. यहीं से शुरू हुआ दक्षिण भारतीय फिल्मों का सफर जो आज भी जारी है, अनवरत... लगातार... !

जब अमेरिका और ब्रिटेन की फिल्मों की बाजार में बाढ़ सी आ रही थीं तब बॉम्बे और मद्रास में बनाई गई फिल्मों को पूरी तरह से भारतीय फिल्मों के रूप में देखा गया और वह स्क्रीन पर पहला वास्तविक भारतीय प्रतिनिधित्व था. सिनेमा दक्षिण भारत में एक लोकप्रिय मनोरंजन के रूप में स्थापित किया जा रहा था, इसलिए ब्रिटिश शासन के खिलाफ किए गए असहयोग आंदोलन ने राजनीतिक जागरूकता लाई और गांधी राष्ट्रीय नेता के रूप में उभरे. हालांकि मद्रास में मूक सिनेमा की विचारधारात्मक या राजनीतिक सक्रियता के प्रति कोई प्रक्षेपण नहीं था, लेकिन यह निश्चित रूप से राजनीतिक चेतना को अधिग्रहण कर रहा था. ब्रिटिश सरकार ने फिल्मों में इन विचारों के चित्रण को रोकने का प्रयास भी किया और फिल्म सेंसरशिप को कड़ा कर दिया. सेंसरशिप मशीनरी भारतीय राजकुमारों, श्रम, कम्युनिस्ट विचारों, गांधीवादी कार्यक्रम जैसे मुद्दों पर विशेष रूप से संवेदनशील थीं.

दक्षिण भारतीय सिनेमा की प्रमुख विशेषताओं में राजनीति के साथ घनिष्ठता आम बात हैं. दो सितारे मुख्यमंत्री भी बन चुके हैं जिसमे एमजी रामचंद्रन और जयललिता तमिलनाडु की मुख्यमंत्री रह चुकी हैं. अन्नादुराई और एम करुणानिधि खुद नाटककार थे और नाटकों में काम करते थे. बाद में वे तमिलनाडु के मुख्यमंत्री बने. अभी हाल ही में एक और दक्षिण भारतीय सुपरस्टार रजनीकान्त ने भी राजनीति में कदम रखा है.

जब दक्षिण भारतीय सिनेमा में आवाज आई, नाटक कलाकारों के राजनीतिक, राष्ट्रवादी समूह फिल्मों की दुनिया में चले गए. वे उनके साथ सिनेमा में उनकी विचारधारा और राजनीतिक सक्रियता के लिए एक प्रवृत्ति लाए. पहली तमिल फिल्म कालिदास 1931 में बनाई गई. यह दक्षिण भारतीय सिनेमा के राजनीतिकरण की शुरुआत थी. कुछ सालों के भीतर देशभक्ति फिल्मों का निर्माण किया गया और सिनेमा राजनीतिक प्रचार का साधन बन गया. कई फिल्म कलाकारों ने राजनीति में सीधा हिस्सा लेना शुरू कर दिया.

मंच और स्क्रीन दोनों से मनोरंजन की दुनिया के कलाकारों ने अपने राजनीतिक सक्रियता से एक नया सम्मान प्राप्त किया.

स्थिति

दक्षिण भारतीय फिल्मों यथा मलयालम/तमिल/तेलुगू/कन्नड की स्थिति आज इतनी मजबूत है कि अखिल भारतीय सिनेमा बॉलीवुड भी इसका अनुसरण करता है. आज अनेकों ऐसी फिल्में हैं जो मूल दक्षिण भारतीय फिल्मों का रीमेक हैं. दक्षिण भारतीय सिनेमा ने भारतीय सिनेमा को अनेकों सुपरस्टार दिये हैं. पिछले साल की ब्लॉकबस्टर फिल्म 'बाहुबली' और 'बाहुबली-2' की सफलता इसी बात को बयां करती हैं. दक्षिण भारतीय अभिनेता प्रभास को इस फिल्म ने दुनिया भर के चर्चा केंद्र में स्थापित कर दिया. कुछ दक्षिण भारतीय फिल्में जो बॉलीवुड में रीमेक बनी-

सिंघम (तमिल), गजनी (तमिल), तेरे नाम (तमिल), जुड़वा (तमिल), रेड्डी (तेलुगू), राउडी राठौड़ (तेलुगू), हेरा-फेरी (मलयालम), सन ऑफ सरदार (तेलुगू), दबंग (तेलुगू), नायक- द रियल हीरो (तमिल)

दक्षिण भारत की फिल्म इंडस्ट्री का अपना जलवा है. यहाँ पर भी बॉलीवुड की तरह अपनी विशिष्ट पहचान है. दक्षिण की इंडस्ट्री को इस प्रकार से जाना जाता हैं- तमिल - कोल्लीवुड, मलयालम - मोलीवुड, तेलुगू - टोलीवुड, कन्नड - संडलवुड, कोंकणी - कोंकणी फिल्म इंडस्ट्री

दक्षणी भारतीय सुपरस्टार जो बॉलीवुड में पहचाने गए-

आसिन, आर माधवन, तमन्ना भाटिया, प्रकाश राज, श्रीदेवी, जया प्रदा, हेमा मालिनी, रेखा, धनुष.

जहां तक विदित है कि दक्षिण भारतीय फिल्में सम्पूर्ण भारत में अपना प्रभाव छोड़ती हैं. वे कहीं न कहीं आम आदमी को शिक्षा भी देती हैं. यह इंडस्ट्री ऐसी इंडस्ट्री है जो बॉलीवुड को अपने पीछे लगा लेती है. दक्षिण की फिल्मों में नायक नायिका की फूहड़ता को नहीं दिखाया जाता जो बॉलीवुड में प्रमुखता से दिखाया जाता है. समाज में शिक्षा देने वाली फिल्में बनाना यहाँ का मुख्य उद्देश्य रहा है. नायक और नायिका का सौंदर्य वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता. स्थानीय भाषा में होने के कारण गाने हिन्दी में डब करना मुश्किल होता है फिर भी सुर और ताल का संगम विशेष रूप से आकर्षित करता है.

कुछ समय पहले रिलीज हुई 'बाहुबली 2' की बड़ी सफलता ने यह साबित कर दिया है कि दक्षिण भारतीय फिल्में भी बॉलीवुड फिल्मों से कम नहीं हैं. वैसे भी बॉलीवुड में दक्षिण भारतीयों फिल्मों से प्रेरित होकर कई फिल्में बनाई जाती हैं. कमाई के मामले में 'रोबोट', 'लिंगा' और 'मगधीरा' जैसी साउथ इंडियन फिल्में 100 करोड़ रुपए का आंकड़ा छू चुकी हैं. फिल्मों की कमाई के साथ ही फिल्मी सितारों की कमाई भी बहुत मायने रखती है. जो एक्टर जितना बड़ा होता है, वो किसी भी फिल्म के लिए उतनी ही ज्यादा फीस भी लेता है. हालांकि यह तो बहुत आम बात है. मगर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यदि कुछ बॉलीवुड और साउथ के एक्टर्स की कमाई की तुलना की जाए तो साउथ के कई एक्टर्स कमाई के मामले में बॉलीवुड के सुपरस्टार्स से भी आगे हैं.

कमल हासन तमिल फिल्मों के दिग्गज अभिनेताओं में से हैं. 'दशावतारम' और 'विश्वरूपम' जैसी फिल्मों में काम कर चुके हासन एक फिल्म के लिए 25 से30 करोड़ रुपये की फीस लेते हैं. वहीं बॉलीवुड के शहंशाह अमिताभ बच्चन एक फिल्म से 20 करोड़ रुपये कमाते हैं. बाहुबली वाले प्रभास एक फिल्म के लिए 20 से 25 करोड़ फीस लेते हैं. जबकि 'बाजीराव मस्तानी' और 'पद्मावती' जैसी बड़े बजट की फिल्म का हिस्सा रणवीर सिंह एक फिल्म के लिए 15से20 करोड़ रुपये चार्ज करते हैं.

रजनीकांत तो तमिल फिल्मों के 'थलाइवा' (थलाइवा तमिल शब्द हैं जिसका अर्थ हीरो या नायक होता है) हैं. रजनी एक फिल्म के लिए 50 से 60 करोड़ रुपये चार्ज करते हैं. यह सलमान खान (40 से50 करोड़), शाहरुख खान (45 करोड़), आमिर खान (50 करोड़) और अक्षय कुमार (45 करोड़) जैसे सितारों से भी ज्यादा है. दक्षिण भारतीय सिनेमा के स्टाइलिश हीरो अल्लू अर्जुन 10 से15 करोड़ रुपयों की मांग करते हैं. वहीं दूसरी ओर जूनियर बी की फीस 9 करोड़ रुपये है. महेश बाबू एक फिल्म के लिए 16 से 18 करोड़ रुपये की फीस लेते हैं.

निष्कर्ष के तौर पर देखें तो दक्षिण भारतीय फिल्में बॉलीवुड पर हावी हैं. कितनी ही विशेषताएं हैं जो दक्षिण फिल्म इंडस्ट्री को रोचक और दर्शनीय बनाती है. दक्षिण के फिल्मी कलाकार अपनी खास पहचान रखते हैं. अपनी खास शैलियों के लिए दक्षिण फिल्म इंडस्ट्री अपनी खास पहचान रखती है. नायक नायिकाओं की फूहड़ता नहीं होने के कारण परिवार के साथ बैठकर देखने में भी शंका नहीं होती हैं. हास्य फिल्मों की तो बात ही निराली है.

सुभाष चन्द्र
क्षे. का., मदुरै

मराठी सिनेमा : विषयों का नयापन

सिनेमा एक बहुत प्रभावशाली माध्यम है. समाज में सिनेमा विभिन्न विचारों तथा अलग-अलग उम्र तथा स्तर पर देखा जाता है. भारतीय समाज में विविध सामाजिक स्तरों पर जातिवादी तथा परंपरावादी हजारों समस्याएँ आज भी मौजूद हैं. जब इन सामाजिक समस्याओं पर सिनेमा बनाया जाता है तो सभी उम्र के दर्शक उस विषय पर अपने दृष्टिकोण से विचार करते हैं. इस विषय पर उद्बोधक चर्चा होती है. इससे विचार मंथन होता है. इसलिए हर गंभीर विषय पर फिल्म बनाना हमारे समाज की प्रगति के लिए आवश्यक है. यह एक जागृत और जीवित समाज का लक्षण है. भारतीय सिनेमा के इतिहास में हर गंभीर सामाजिक समस्या के ऊपर अपनी तरह से भाष्य करने में मराठी सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है.

भारतीय सिनेमा के पितामह दादासाहब फाल्के स्वयं महाराष्ट्र से थे. दादासाहब फाल्के ने 1912 में पहली भारतीय अवाक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई. इस चलचित्र के निर्माता, लेखक, कैमरामैन सब कुछ दादासाहेब ही थे. दादासाहेब ने कुल 125 फिल्मों का निर्माण किया. 1929 में कोल्हापुर में फतेहलाल, दामले व वी शांताराम ने 'प्रभात फिल्म कंपनी' की स्थापना की. प्रभात फिल्म कंपनी ने 'शेजारी', 'माणूस', 'कुंकू' आदि मराठी फिल्में बनाकर उस वक्त की बहुत गंभीर सामाजिक समस्याओं और अलग विषयों पर सिनेमा बनाने की शुरुआत की. 'शेजारी' वी शांताराम द्वारा निर्देशित प्रतिष्ठित सामाजिक फिल्म है. यह फिल्म भारतीय समाज में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आधारित है.

1937 में बनी 'कुंकू' भारत में बनी बेहतरीन फिल्मों में से एक है. यह फिल्म वैवाहिक जोड़ों की बाधाओं को लेकर मनोवैज्ञानिक तनावों को बखूबी पेश करती है. वेनिस इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल में यह फिल्म दिखाई गई थी. 1940 का दौर द्वितीय विश्वयुद्ध से गुजर रहा था. दुनिया हिटलर के अमानवीय व्यवहार के खिलाफ थी. ऐसे समय प्रभात ने 'संत ज्ञानेश्वर' फिल्म बनाने की आवश्यकता महसूस की तथा वर्ष 1950 में प्रभात ने 'संत ज्ञानेश्वर' फिल्म बनाई. संत ज्ञानेश्वर ने सारी बाधाओं के बावजूद 'मानवता' का प्रचार किया था. प्रभात फिल्म ने 'संत तुकाराम', 'अमृत मंथन', 'सैरंध्री' जैसी फिल्में बनाकर हर बार एक नए विषय की रचना की. इन नए विषयों को अपनाने का सिलसिला प्रभात के बाद भी चलता रहा.

भालजी पेंढारकर, तथा गजानन जागीरदार मराठी के जानेमाने निर्देशक थे. जिन्होंने 'महारथी कर्ण', 'वाल्मीकि', 'कान्होपात्रा' जैसी ऐतिहासिक / पौराणिक फिल्में बनाईं. 1981 में अमोल पालेकर ने 'आक्रीत' नामक फिल्म बनाई. 1970 के दशक के सनसनीखेज 'मानवत' हत्या मामलों पर यह फिल्म बनाई गई थी. अंधश्रद्धा के छलावे में आकर धन पाने के लिए कुछ समाजकंटकों ने नरबली देने की शृंखला शुरू की थी. भारतीय जीवन की इस विदारक सत्य कहानी को पालेकर ने 'आक्रीत' सिनेमा में फिल्माया था. हालांकि इस गंभीर विषय पर चलचित्र बनाना एक चुनौती थी, जिसे मराठी सिनेमा ने समय की कसौटी पर अपनाकर दिखाया. 1982 में डॉ. जब्बार पटेल ने 'उंबरठा' बनाई. जिसने पीड़ित महिलाओं को आधार देने हेतु चलाए जाने वाले रिमांड होम की विदारक स्थिति पर प्रकाश डाला था. बाद में यह फिल्म 'सुबह' शीर्षक के तहत हिन्दी में भी बनाई गई. अपना घर छोडकर जब स्त्री दहलीज लांधकर करियर बनाने हेतु बाहर निकलती है तो उसे किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिसे अपने समय की मशहूर अदाकारा स्मिता पाटिल ने बखूबी पर्दे पर उतारा था.

चित्रा पालेकर ने फिल्म 'मातीमाय' बनाकर एक बहुत ही हटकर विषय पर्दे पर दिखाया और उस अजीबो गरीब कहानी से एक अलग संदेश भी दिया. इस फिल्म की नायिका 'चंडी' है, जो गाँव के बच्चों के अंतिम संस्कार की निगरानी का अप्रिय कार्य करती है. यह कार्य उसके पिता की ओर से उसके

पास आया है, जिसे गाँव वाले घृणित समझते हैं और उसे 'चुड़ैल' मानकर गाँव के बाहर रखते हैं. अलग सा कार्य करनेवाली इस 'स्त्री' को समाज की ओर से ही नहीं बल्कि उसके पति की ओर से भी कितनी यातनाएँ दी जाती हैं, उसकी करुण कहानी चित्रा जी प्रस्तुत करती हैं. 'नकळत' इस बिलकुल भावुक और संवेदनशील मराठी फिल्म में एक छोटी सी भूल से मियां बीबी में पड़ती दरार और बच्चों पर होनेवाले दुष्परिणामों को बयान किया गया है, इसे विक्रम गोखले और सविता प्रभुणे ने अपने सशक्त अभिनय से खूबसूरती से पेश किया है. 'चौकट राजा' फिल्म में दिलीप प्रभावलकर ने दिव्यांग बच्चों की समस्या को प्रभावी तरीके से पर्दे पर उतारा है. 'बालक पालक' एक और मराठी फिल्म, यौवनावस्था में प्रवेश करनेवाले किशोरवयीन बच्चों के सेक्स एज्यूकेशन पर बनाई गई सुंदर फिल्म है. उम्र के नाजुक मोड़ पर खड़े बच्चों का सही मायने में मार्गदर्शन करने में सहायक साबित हुई है यह फिल्म !

2005 में रिलीज हुई अन्य मराठी फिल्म 'श्वास' में एक ग्रामीण बच्चे की आँखों के कैंसर का निदान होता है. बच्चे के जीवन को बचाने का एकमात्र तरीका ऑपरेशन करना है, जो बच्चे को अंधा कर देनेवाला है. देहाती दादाजी अंधा होने से पहले पोते को दुनिया की सुंदरता दिखाना चाहते हैं. वर्ष 2004 में प्रदर्शित हुई 'श्वास' फिल्म ऑस्कर में भारत की आधिकारिक प्रविष्टि थी और 'सर्वश्रेष्ठ विदेशी भाषा' फिल्म श्रेणी के लिए अकादमी पुरस्कार में छठवें स्थान पर रही थी. यह सत्य घटना पर आधारित फिल्म थी. 'श्वास' ने 2004 का सर्वश्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार जीता. लगभग पचास सालों के बाद (श्यामची आई) किसी मराठी फिल्म को यह पुरस्कार प्राप्त हुआ था. 2014 में प्रदर्शित मराठी फिल्म 'यलो' विकासशील विकलांगता और बालव्यवहार के साथ माँ बेटी के सम्बन्धों की एक अनोखी कहानी कहती है. विकलांग लड़की गौरी गाड़गील की असली कहानी पर आधारित यह फिल्म 'डाउन सिंड्रोम' वाली बच्ची को स्विमिंग चैंपियन बनने की कहानी को रूपहले पर्दे पर बखूबी दिखाती है.

2008 में प्रदर्शित फिल्म 'जोगवा' ने राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों में पाँच पुरस्कार प्राप्त किए. फिल्म का आधार दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश की देवदासी परंपरा है. 'देवदासी' वे लोग हैं जो अपना पूरा जीवन भगवान की भक्ति और सेवा में बिताना चाहते हैं. ये देवी यलम्मा के भक्त होते हैं, इन्हें फिर गाँव तथा पुजारियों के गुलामों के रूप में माना जाता है. यह फिल्म पुरातन परम्पराओं से परेशान पीड़ित समाज के पाखंड और शोषण को उजागर करती है. 'जोगवा' में इस प्रथा के तहत पुरुष को भी महिला जैसे कपड़े अर्थात साड़ी पहनकर घूमना होता है तथा नाच, गाकर, 'जोगवा' (भीख) मांगना पड़ता है. इन लोगों का शोषण गाँव के विभिन्न तबकों द्वारा अलग-अलग ढंग से किया जाता है. इस शोषण के विरोध में इस तबके के एक स्त्री और पुरुष द्वारा किया गया विद्रोह यानि 'जोगवा' की संवेदनशील कहानी! 'जोगवा' एक महिला की प्रेरणादायी यात्रा है, जो भेदभाव, यौन बंधनों तथा दासता से मुक्त होकर सच्ची खुशी पाना चाहती है. यह नायिका क्रांतिकारी दिखाई है, जो देवदासी प्रथा के पाखंडों को छोड़कर एक आम आदमी का जीवन बिताने की कोशिश करती है.

भारतीय सिनेमा के इतिहास में प्रादेशिक भाषाओं में मराठी ने अनेक गंभीर विषयों को चुनकर बेहतरीन फिल्में बनाई हैं. मराठी फिल्मों में हरदम विषयों के नएपन को चुना जाता है. मराठी फिल्म इंडस्ट्री ने 1929 से 2017 तक कलात्मकता और मनोरंजन को प्रदर्शित करते हुए समाज के उद्‌बोधन का काम भी किया है. 'दे धक्का', 'सैराट', 'गुलाबजाम' जैसी मराठी फिल्में कमर्शियल होने के साथ साथ ही कुछ नयापन भी दे जाती है.

आज भी मराठी सिनेमा नए नए विषयों को लेकर नए-नए रूपों में दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत होता है. मराठी के कमर्शियल सिनेमा में भी नए विषयों को प्राथमिकता दी जाती है. आज भी यदि आप मराठी फिल्मों का कैनवास देखेंगे तो वह विषयों, कथ्य और तथ्य की विविधता से रंगीन है साथ ही विषयों के नये पन को लेकर एक व्यापकता भी दे जाता है।

अंजली मदन यावलकर
के.का., मुंबई

भोजपुरी फिल्मों की यात्रा

भोजपुरी, हिन्दी भाषा की एक बोली है. चूँकि हम सभी जानते हैं कि किसी भी भाषा का प्रचार-प्रसार शीघ्र होता है किन्तु बोली एक सीमित क्षेत्र में बोली एवं समझी जाती है. अतः इसका प्रचार-प्रसार बहुत ही कम होता है. यह बोली उत्तरी भारत, पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रयोग की जाती है. इसे बोलने और समझने वाले दुनिया के कई हिस्सों में पाए जाते हैं. जिनमें संयुक्त राज्य अमेरिका, युनाइटेड किंगडम, फ़िजी, गुयाना, मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, त्रिनिदाद, टोबैगो और नीदरलैंड शामिल हैं. दासता के उन्मूलन के कारण 1800 के अंत और 1900 के शुरुआत में, कई औपनिवेशिक शक्तियों ने श्रम की कमी का सामना किया. उसकी पूर्ति उन्होंने कई भारतीयों को अपने अधिकार क्षेत्र में ले जाकर की, भोजपुरी बोलने वाले क्षेत्रों में से कई हज़ार लोग मजदूरों के रूप में इन क्षेत्रों में ले जाए गए. वर्तमान में वेस्ट इंडीज़, ओशिनिया और दक्षिण अमेरिका में करीब-करीब 200 मिलियन लोग भोजपुरी को एक देशी या दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं.

भोजपुरी बोली के प्रचार-प्रसार में भोजपुरी सिनेमा की महत्वपूर्ण भूमिका है. भोजपुरी सिनेमा का मुख्य क्षेत्र बिहार है. इसके अलावा यह सिनेमा उत्तर प्रदेश और नेपाल में भी अपनी जगह बना चुका है. भोजपुरी सिनेमा का आरंभिक दौर 1963 में प्रदर्शित विश्वनाथ शाहाबादी की फिल्म 'गंगा मइया तोहे पियरी चढ़इबो' के साथ प्रारम्भ होता है. हालांकि 20वीं सदी के पांचवें दशक में भोजपुरी क्षेत्र के कई लेखक कवि कलाकार मुंबई फिल्म उद्योग में सक्रिय थे और इन भोजपुरियों को अपने देश, गांव-जवार की बड़ी याद सताती थी. 'बरहज के मोती बीए' को हिन्दी फिल्मों में भोजपुरी गीतों के प्रचलन का श्रेय दिया जाना चाहिए. इससे हिन्दी भाषी दर्शक भोजपुरी की मिठास से परिचित हुए. पचास के दशक में भाषाई आधार पर भारत में राज्यों का पुनर्गठन हो रहा था. वास्तव में उसी दौर में हिन्दी फिल्म उद्योग की भी तस्वीर बदल रही थी. सत्यजीत रे ने 'पथेर पांचाली' बनाकर प्रादेशिक अथवा आंचलिक भाषाओं में सिनेमा बनाने की संभावना और उसकी ताकत दोनों का एहसास करा दिया था. अब हिन्दी फिल्म उद्योग में भी कन्टेंट को लेकर बहस शुरू हुई थी और जिन भाषाओं में सिनेमा नहीं था उन भाषाओं में इस जन कला माध्यम को अपनाये जाने की छटपटाहट इसने पैदा की. 1961 में नितिन बोस के निर्देशन में बनी 'गंगा-जमुना' में पहली बार अवधी भाषा में संवादों का इस्तेमाल हुआ और भोजपुरी में गीत लिखे गये. फिल्म और उसके गीत सुपरहिट हुए. इससे पहली बार यह विश्वास पैदा हुआ कि उत्तर भारतीय बोलियों में भी फिल्म बनायी जा सकती है. इसी साल विश्वनाथ शाहाबादी, जो बिहार के एक बड़े व्यवसायी थे और जिन्हें भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भोजपुरी में फिल्म बनाने के लिए प्रेरित किया था; वे बम्बई पहुंचे. दादर में वे प्रीतम होटल में ठहरे जो पुरबियों का अड्डा था यहीं उनकी मुलाकात नाजिर हुसैन से हुई जो वर्षों से एक पटकथा तैयार करके भोजपुरी फिल्म बनाने की जुगत में थे और इस तरह जनवरी 1961 में नाजिर हुसैन के नेतृत्व में 'गंगा मइया तोहें पियरी चढ़इबो' के निर्माण की योजना बनी. फिल्म का निर्देशन बनारस के कुंदन कुमार को सौंपा गया. बनारस के ही रहने वाले कुमकुम और असीम को फिल्म में नायिका और नायक बनाया गया. संगीत निर्देशन की जिम्मेदारी चित्रगुप्त को दी गई. तब बकायदा 16 फरवरी 1962 को पटना के ऐतिहासिक शहीद स्मारक पर फिल्म का मुहुर्त सम्पन्न हुआ. 1963 में यह फिल्म प्रदर्शित हुई और बेहद सफल हुई. बनारस में यह फिल्म प्रकाश टॉकीज में प्रदर्शित हुई थी और प्रदर्शन के एक सप्ताह के भीतर ही इसकी सूचना आसपास के गांवों में फैल गयी और लोग बैलगाड़ी, इक्का और पैदल झुण्ड के झुण्ड सिनेमा देखने पहुंचने लगे. प्रकाश टॉकीज के बाहर मेले जैसा दृश्य होता था और कहा जाने लगा- 'गंगा नहा विश्वनाथ जी के दर्शन कर, गंगा मइया देख तब घरे जा.' गंगा मइया तोहे पियरी ...' की सफलता के बाद तो भोजपुरी फिल्मों की लाइन लग गई. 1963 से लेकर 1967 के बीच सौ से ज्यादा भोजपुरी फिल्मों के निर्माण की घोषणा की गई. इनमें से जो फिल्में प्रदर्शित हुई उनमें 'विदेशिया', 'लागी नाहीं छूटे राम', 'नइहर छूटल जाय', 'हमार संसार', 'बलमा बड़ा नादान', 'कब होई गवना हमार', 'जेकरा चरनवा में लगलें परनवा', 'सीता मइया', 'सइयां से भइलें मिलनवा', नजीर हुसैन की 'हमार संसार' और 'भौजी', आकाशवाणी पटना के विख्यात रेडियो नाटक पर आधारित 'लोहा सिंह', 'विधवा नाच नचावे', सोलह सिंगार करे दुलहिनिया' और 'गंगा' प्रमुख है.

लेकिन मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि भोजपुरी फिल्मों को सामान्यतः 1960 और 1970 के दशक में बहुत ज्यादा सफलता नहीं मिली. 1980 के दशक में, पर्याप्त रूप से एक उद्योग बनाने के लिए पर्याप्त भोजपुरी फिल्मों का

उत्पादन बहुत ही बढ़ गया. 'माई' (1989, राजकुमार शर्मा द्वारा निर्देशित) और 'हमार भौजी' (1983, कल्पतरू द्वारा निर्देशित) के रूप में फिल्मों ने बॉक्स ऑफिस पर छिटपुट सफलता हासिल की. 'नदिया के पार' गोविंद मनीस द्वारा निर्देशित 1982 हिंदी-भोजपुरी ब्लॉकबस्टर और सचिन, साधना सिंह, इंदर ठाकुर, मिताली, सविता बजाज, शीला डेविड, लीला मिश्रा और सोनी राठौड हैं. यह फिल्म भोजपुरी फिल्म जगत में मील का पत्थर साबित हुई किन्तु अवसान भी नजदीक ही रहा.

2001 में रजत जयंती के साथ यह उद्योग फिर से शुरू हुआ. 'तू जान हमार' (मोहन प्रसाद द्वारा निर्देशित) आई. इसके बाद 'पंडितजी बताई ना बियाह कब होई' (2005, मोहन प्रसाद द्वारा निर्देशित) और 'ससुरा बड़ा पैसे वाला' (2005) भोजपुरी फ़िल्म उद्योग में वृद्धि के एक मापदंड में, दोनों ने बिहार और उत्तर प्रदेशों में समय पर मुख्यधारा बॉलीवुड की हिट की तुलना में बेहतर कारोबार किया. क्षेत्रीय समझे जाने वाले भोजपुरी फिल्म उद्योग की तस्वीर बदलने में सबसे बड़ी भूमिका रही 2005 में प्रदर्शित फिल्म 'ससुरा बड़ा पइसा वाला' की. इसने भोजपुरी सिनेमा के एक तीसरे दौर को जन्म दिया, जो पहली बार बाजार की दृष्टि से नई संभावनाओं को जन्म दे रहा था. फिल्म व्यवसाय विश्लेषक तरन आदर्श इन संभावनाओं की पड़ताल करते हुए कहते हैं कि ज्यादातर भोजपुरी फिल्में छोटे बजट की होती हैं जिनमें 20 से 30 लाख रूपये लगाये जाते हैं और इनमें से कई एक से दो करोड़ रूपये तक का व्यापार कर लेती हैं. ज्यादातर फिल्में अपनी लागत से दस गुना ज्यादा का व्यवसाय करती हैं और एक अच्छी फिल्म दस से बारह करोड़ का मुनाफा कमा सकती हैं. फिलहाल इसका उदाहरण 'ससुरा बड़ा पइसा वाला' ही है. फिल्म में तीस लाख रूपये लगे और इसने पन्द्रह करोड़ का व्यवसाय किया. इसी तरह मनोज तिवारी की 'दरोगा बाबू आई लव यू' ने चार करोड़ और 'बंधन टूटे ना' ने तीन करोड़ का व्यवसाय किया. इसी के चलते अब भोजपुरी फिल्मों का बजट भी बढ़ने लगा है और एक से डेढ़ करोड़ रूपये बजट की फिल्में भी बनने लगी हैं. भोजपुरी में भी मनोज तिवारी, रवि किशन और निरहुआ जैसे स्टार सामने आये हैं जिनका प्रति फिल्म पारिश्रमिक 25 से लेकर 50 लाख होता है. यह दौर चकाचौंध से लबरेज है पर अधिकांश भोजपुरियों का मानना है कि इनमें इनकी माटी की गंध और उनके सवालात अनुपस्थित हैं. व्यावसायिक सफलता निश्चित तौर पर संभावनाओं के लिए नए द्वार खोलती हैं. निश्चय ही आने वाले दिनों में कुछ अच्छी और सार्थक भोजपुरी फिल्में सामने आएंगी क्योंकि भोजपुरी फिल्मों की यात्रा चार दशक पुरानी है और उसने कई कालजयी फिल्में दी हैं.

मुख्यधारा बॉलीवुड सिनेमा के कई प्रमुख सितारों, जिनमें अमिताभ बच्चन, शत्रुघ्न सिन्हा भी शामिल हैं, ने हाल ही में भोजपुरी फिल्मों में काम किया है. मिथुन चक्रवर्ती की भोजपुरी की पहली फिल्म 'भोले शंकर', जो 2008 में रिलीज़ हुई, अब तक की सबसे बडी भोजपुरी हिट मानी जाती है. 2008 में, सिद्धार्थ सिन्हा द्वारा 21 मिनट की डिप्लोमा भोजपुरी फिल्म, 'उडेह बान' (अनक्रोवेल) को बर्लिन इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल में विश्व प्रीमियर के लिए चुना गया था. बाद में इसे बेस्ट लघु फिक्शन फिल्म के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला.

भोजपुरी कवि मनोज भावक ने भोजपुरी सिनेमा का इतिहास लिखा है. भोजपुरी सिनेमा के विश्वकोश के रूप में भावक को काफी ख्याति मिली.

फरवरी 2011 में, भोजपुरी सिनेमा के 50 वर्षों के पूरे होने के उपलक्ष्य में पटना में तीन दिवसीय फिल्म और सांस्कृतिक उत्सव का आयोजन किया गया. पहला भोजपुरी रियलिटी फिल्म 'धोखा' (ओम कौशिक फिल्म्स के तहत निर्माण) है. रश्मी राज कौशिक विक्की और रेणु चौधरी के निर्देशन में विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में नामांकित और स्क्रीनिंग की गई है.

2017 में भोजपुरी फिल्म इंडस्ट्री के इतिहास में पहली बार किसी गाने को साढ़े 10 करोड़ से ज्यादा लाइक यू ट्यूब पर मिले हैं. यह गाना 'राते दीया बुताके' पवन सिंह की फिल्म 'सत्या' का प्रमोशनल सॉन्ग है, जिसे पवन सिंह और आम्रपाली दुबे पर फिल्माया गया था. पवन सिंह और काजल राघवानी का एक डांस वीडियो 'छलकता हमरो जवनिया ए राजा' (फिल्म 'भोजपुरिया राजा') यूट्यूब पर 8 करोड़ से ज्यादा बार देखा जा चुका है. इस वीडियो को यूट्यूब पर 8 मई 2016 को डाला गया था. आम्रपाली दुबे एक भोजपुरी फिल्म के लिए करीब 7-9 लाख रुपए लेती हैं. मोनालिसा (अंतरा बिस्वास) को एक फिल्म के 5-7 लाख रुपए मिलते हैं.

भोजपुरी फिल्मों की यात्रा अभी भी जारी है. निकट भविष्य में यह नई तकनीक के साथ मिलकर ग्लैमर की नई दुनिया में पहुँचने वाली है और अधिक वृद्धि करने वाली है.

श्वेता सिंह
क्षे.का., कोलकाता

संस्कृत फिल्में

हमारा देश विविधताओं में एकात्मकता का प्रतीक है. विश्व के किसी अन्य देश की तुलना में भारतवर्ष में भाषा, संस्कृति, भौगोलिक स्वरूप इत्यादि पक्षों में सर्वाधिक विविधताएँ पाई जाती हैं. भारतवर्ष में भाषाओं में सबसे अधिक विविधताएँ विद्यमान हैं. भारतीय संविधान में 22 अनुसूचित भाषाएँ हैं. इन भाषाओं में संस्कृत भी एक प्राचीनतम भाषा है. भारत की जनगणना में 2001 के अनुसार करीब 14135 लोग संस्कृत भाषा बोलते हैं. संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी तथा ब्राम्ही लिपि है. संस्कृत भाषा को देववाणी या सुरभारती भी कहा जाता है. संस्कृत भाषा विश्व की सबसे पुरानी उल्लेखित भाषा है. आधुनिक भाषाओं जैसे संस्कृत, मराठी, सिंधी, पंजाबी इत्यादि भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा को ही कहा जाता है. जिस प्रकार अन्य भाषाओं में फिल्में बनाई जाती हैं, जो कि अपने विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है, उसी प्रकार संस्कृत भाषा में भी फिल्मों का निर्माण किया जाता है.

फिल्मों का जन जीवन के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ता है. हिन्दी भाषा में देश में सर्वाधिक फिल्में बनाई जाती हैं, लेकिन संस्कृत भाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए देश में संस्कृत भाषा में भी फिल्मों का निर्माण किया गया. भारतीय सिनेमा में आदि शंकराचार्य, जी वी अय्यर द्वारा 1983 में निर्मित प्रथम संस्कृत फिल्म है. इस संस्कृत फिल्म में 8वीं शताब्दी के हिन्दू दार्शनिक आदि शंकराचार्य के जीवन को दर्शाया गया है. आदि शंकराचार्य जी ने हिन्दू धर्म के दर्शन में अद्वैत सिद्धान्त को समेकित किया, जो कि इस फिल्म में प्रदर्शित किया गया है. राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार समारोह में संस्कृत भाषा में बनी इस फिल्म को चार पुरस्कार प्राप्त हुए.

संस्कृत सिनेमा में आज तक केवल छह फिल्मों का ही निर्माण किया गया है. संस्कृत फिल्मों में बनी दूसरी फिल्म भगवद गीता जो कि 1992 में प्रदर्शित हुई, जिसे पुनः श्री जीवी अय्यर जी ने निर्देशित किया था तथा चालीसवें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों में जिसे सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार प्राप्त हुआ. इसके करीब 22 वर्षों के बाद सन 2015 में संस्कृत में बनी फीचर फिल्म जिसे केरल राज्य में निर्मित किया गया, जिसका नाम 'प्रियमानसम' है. यह केरल राज्य की प्रथम संस्कृत फिल्म एवं देश की तीसरी संस्कृत फिल्म थी. 63वें राष्ट्रीय पुरस्कारों में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म (संस्कृत) का पुरस्कार भी इस फिल्म को प्राप्त हुआ. अगली संस्कृत फिल्म 'इष्टि' जो कि 2016 में बनाई गई तथा सामाजिक मुद्दे पर दृष्टिपात करनेवाली प्रथम संस्कृत फिल्म थी. 47वें अंतर्राष्ट्रीय फिल्म महोत्सव जो कि 2016 में गोवा में आयोजित हुआ, तब इस फिल्म की विशेष स्क्रीनिंग पैनोरमा सेक्शन में की गई. संस्कृत भाषा में बनी पाँचवी फिल्म सूर्यकांता है, जो कि केरल राज्य से बनी लगातार तीसरी संस्कृत फिल्म थी. वर्तमान जीवन दर्शन एवं वर्तमान परिवेश में बनी यह प्रथम संस्कृत फिल्म है. केरल फिल्म क्रिटिक्स एसोसिएशन अवार्ड्स 2017 में इस फिल्म को 'स्पेशल जूरी एवार्ड' से पुरस्कृत किया गया. इसी शृंखला में छठी एवं अंतिम संस्कृत फिल्म है 'अनुरक्ति' जो कि प्रथम संस्कृत 3डी फिल्म है तथा संस्कृत फिल्मों में पहली बार किसी गाने को सम्मिलित करनेवाली प्रथम फिल्म भी है. 48वें अंतर्राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल ऑफ इंडिया में इस फिल्म की स्क्रीनिंग की गई. संस्कृत भाषा में बननेवाली सातवीं फिल्म 'पुण्यकोटि' है, जो कि संस्कृत भाषा में बननेवाली प्रथम एनिमेटेड फिल्म होगी. 'पुण्यकोटि' फिल्म को भी श्री रविशंकर वी जी निर्देशित कर रहे हैं. देश की प्राचीनतम भाषा संस्कृत को जीवित रखने का समय-समय पर प्रयास किया जाता रहा है. लेकिन इतने लंबे समय के फिल्मों के इतिहास में जहां पर अन्य भाषाओं जैसे- हिन्दी, अँग्रेजी, तमिल, तेलगु, मलयालम, मराठी, गुजराती इत्यादि में हजारों की संख्या में फिल्मों का निर्माण किया जाता है, संस्कृत भाषा में आज तक बनी केवल छह फिल्में इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि हमने संस्कृत भाषा का विस्तार नहीं किया है और संस्कृत भाषा में इसी कारण फिल्में अधिक लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकी हैं.

संस्कृत भाषा का विस्तार शिक्षा के स्तर पर भी बढ़ाया जाना चाहिए. जिसको प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर संस्कृत भाषा को अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित करके किया जा सकता है. संस्कृत भाषा का प्रचार एवं प्रसार हर स्तर पर किया जाना चाहिए. देश में जब इस भाषा का प्रचार एवं प्रसार बृहद स्तर पर होगा तब संस्कृत भाषा में बनी फिल्मों को भी लोकप्रियता प्राप्त होगी. हमारी प्राचीनतम संस्कृत भाषा के विस्तार के लिए संस्कृत फिल्मों की लोकप्रियता समाज में बढ़ना नितांत आवश्यक है. संस्कृत फिल्मों द्वारा देश में ही नहीं विदेशों में भी संस्कृत भाषा का प्रचार एवं प्रसार संभव होगा. इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृत फ़िल्मों के प्रचार एवं प्रसार से विश्व में संस्कृत भाषा अपने जीवंत स्वरूप में विद्यमान रहेगी.

सौरभ अवस्थी
पोल्लाची शाखा, क्षे.का., कोयंबटूर

कोंकणी फिल्मों का सफर

गोवा के मनोरंजन की दुनिया में 24 अप्रैल 1950 यह तारीख काफी महत्वपूर्ण है. इसी दिन पहली पूर्ण रूप से तैयार कोंकणी फिल्म प्रदर्शित हुई थी जिसका नाम था मोगाचो आंवडो. इस फिल्म के माध्यम से कोंकणी भाषा एवं सभ्यता का प्रवेश मनोरंजन की दुनिया में हुआ था और इसका संपूर्ण श्रेय जाता है इस फिल्म के निर्माता श्री ए एल जेरी ब्रिग्रेंजा को. ब्रिग्रेंजा, इस फिल्म के केवल निर्माता ही नहीं बल्कि उन्होंने फिल्म में मुख्य भूमिका भी निभाई थी. ब्रिग्रेंजा कोंकणी फिल्मों के प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं परंतु उनके द्वारा कोंकणी फिल्म को दिए गए महान योगदान को बहुत ही कम याद किया जाता है. कुछ जानकारों के अनुसार मोगाचो आंवडो से पहले कोंकणी भाषा में एक और फिल्म बनाई गई थी जिसका नाम था सुखी कोण. परंतु यह फिल्म कभी प्रदर्शित नहीं हुई इसलिए 'मोगाचो आंवडो' को ही कोंकणी भाषा की प्रथम फिल्म माना जाता है.'मोगाचो आंवडो'फिल्म की विशेषता यह भी है कि पोर्तुगीज शासन में बनी यह केवल एक ही कोंकणी फिल्म है, इसके बाद पोर्तुगीज सरकार द्वारा स्थानीय फिल्मों के निर्माण पर रोक लगाई थी और वह 1961 तक लागू रही.

हाल ही में 'मोगाचो आंवडो' सिनेमा की उपलब्ध रील को पुनःस्थापित किया गया. इसकी भी एक अलग कहानी है. पुणे में रहनेवाले गोवन श्री इसीडोर डांटेस जो कोंकणी सिनेमा से विशेष प्रेम रखते है. डांटेस द्वारा कोंकणी सिनेमा पर प्रथम किताब लिखी गई जिसका नाम था कोंकणी चोलचित्रम'. इस किताब के विमोचन कार्यक्रम के दौरान 'मोगाचो आंवडो' के निर्माता ए एल जेरी ब्रिग्रेंजा के परिवार द्वारा उन्हें मोगाचो आंवडो सिनेमा की एक रील उपहार में दी गई. यह श्री डांटेस के लिए एक अनमोल उपहार था, इसलिए उन्होंने तय किया कि फिल्म के रील को पुनःस्थापित किया जाए. श्री डांटेस द्वारा रील को पुनः चालू करने हेतु अनेक जगह प्रयत्न किए और बड़ी मुश्किल से रील को पुनःस्थापित किया. पुनःस्थापित की गई रील का रन टाइम केवल तीन मिनट का है. श्री डांटेस अभी फिल्म की बाकी रील प्राप्त करने हेतु प्रयत्न कर रहे हैं जो मुंबई में रिवोली (माटुंगा), लिबर्टी (फोर्ट) और स्टार (मझगाँव) में प्रदर्शित की गई थी.

कोंकणी भाषा यह भारत के पश्चिमी तटवर्ती इलाकों में बोली जाती है जिसमें महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक और केरल के तटवर्ती इलाके शामिल हैं. इन चार राज्यों में से गोवा एवं महाराष्ट्र के तटवर्ती इलाकों में कोंकणी भाषा अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है. पिछले 68 साल में कोंकणी भाषा में केवल 45 ऐसी फिल्में है जो पूर्णरूप से तैयार होकर प्रदर्शित की गई जिसमें गोवा, महाराष्ट्र और कर्नाटक की भी फिल्में शामिल है. 'मोगाचो आंवडो', 'सुखाचेम सोपोन', 'आमचे नोकसीब', 'निर्मोन्न', 'म्होजी गोकर्ण', 'कोरतुबंचो संवसर', 'जीवित आमचे ओक्षेम', 'मोग आणि मोइपस', 'सुज़ैन' आदि कोंकणी भाषा में बनी महत्वपूर्ण फिल्में है. 'अलिशा', 'सूड', 'पादरी' और 'अंतर्नाद' यह भी फिल्में है जिसने गोवा और अन्य कोंकणी भाषियों का मनोरंजन किया. हालांकि कोंकणी सिनेमा की संख्या उस हिसाब से कम है परंतु कोंकणी फिल्मों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक अपनी पहचान बनाई है. **'पलताड़चो पोल मानिस'** इस फिल्म को दुनिया की सर्वोत्तम फिल्में वर्ष 2009 की सूची में शामिल किया गया था.

कोंकणी सिनेमा की शुरुआत बहुत साल पहले हुई है परंतु उसका अभी तक का सफर काफी मुश्किल और धीमा रहा. कोंकणी सिनेमा को बहुत ही कम निर्माता मिले और कम लागत के कारण भारत के अन्य सिनेमा जगत के मुक़ाबले कोंकणी सिनेमा में बहुत ही कम नई तकनीकों का उपयोग किया गया है. अधिकतर कोंकणी फिल्में विडियो फिल्म्स ही थी. कोंकणी सिनेमा में वर्ष 2012 में पहली बार डिजिटल थेटरिकल फिल्म के माध्यम से फिल्म बनाई गई. 'द विक्टिम' यह डिजिटल विडियो क्वालिटी में बनाई गई पहली कोंकणी फिल्म थी. कोंकणी भाषा में ऐसी बहुत कम फिल्में बनी जो व्यावसायिक रूप से सफल हो पाई. इसका एक कारण यह भी है कि भले ही सभी गोवन कोंकणी में बोलते हो परंतु बहुत ही कम लोग कोंकणी फिल्मे देखते हैं. कोंकणी फिल्मों को बढ़ावा देने के लिए कोंकणी लोगों के साथ-साथ उस प्रदेश में रहने वाले सभी लोगों को कोंकणी फिल्मों की ओर अपना दृष्टिकोण बदलना होगा और कोंकणी फिल्मों को प्रोत्साहित करना होगा ताकि भारत की इस भाषा में बनी फिल्मों का विस्तार पूरी क्षमता से कर कोंकणी सभ्यता का संवर्धन कर सके.

ललित सानप
क्षे.का., गोवा

पूर्वोत्तर भारतीय सिनेमा

हमारे पूर्वोत्तर के सात राज्यों को भारत की सात बहनें कहा जाता है. प्राकृतिक सम्पदा तथा सांस्कृतिक वैभव का जैसा असीम भंडार यहां बिखरा पड़ा है, वैसा देश क्या शायद पूरी दुनिया में अत्यंत दुर्लभ है. यहाँ विभिन्न कुलों की अनगिनत भाषाएँ, अनगिनत लोग तथा अनगिनत संस्कृतियाँ ऐसी बहुरंगी रचना रचती हैं कि देखने समझने वाला मोहित होकर रह जाता है. ईशान्य सिनेमा इन सात बहनों की अनगिनत भाषाओं में बनी फिल्मों को साथ लाता है. ईशान्य सिनेमा का 83 वर्षों का खूबसूरत इतिहास है.

असम की पहली या कहा जाए कि पूर्वोत्तर राज्य की पहली फिल्म 'जयमती' थी जो भारत की पहली सवाक फिल्म आलम आरा के रिलीज़ होने के 4 वर्ष बाद यानी 1935 में बनी थी. जब भारतीय सिनेमा में पौराणिक एवं धार्मिक फिल्मों का निर्माण ज़ोरों से चल रहा था, तब ज्योतिप्रसाद ने एक ऐसी ऐतिहासिक कहानी का चुनाव किया था जो एक साहसी अहोम राजकुमारी जयमती पर आधारित था. यह फिल्म रूपकुंवर ज्योतिप्रसाद अग्रवाल ने बनाई थी और प्रशिक्षित तकनीशियन की कमी के कारण वे फिल्म के तकनीशियन, निर्देशक, कोरिओग्राफर, उत्पादक, पटकथा लेखक, संपादक, कॉस्टूयम डिज़ाइनर, सेट निर्माता भी बन गए थे. लेकिन इसके बावजूद कठिनाइयां बहुत थी. असम में सिनेमा घरों के अभाव में जयमती को पहले बंगाल में रिलीज़ किया गया और बाद में गुवाहाटी के एक छोटे से सिनेमा घर में भी रिलीज किया गया पर सिनेमा घरों के अभाव में यह फिल्म नहीं चल पायी.

उसके बाद कई और फिल्में बनाई गईं लेकिन अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर सराहना मिलने के बावजूद दर्शक कम ही मिल पाए और ज़्यादातर फिल्में अपने निर्देशक और निर्माता के लिए वित्तीय आपदाएं ही बन कर रह गईं.

कुछ पुरानी पूर्वोत्तर फिल्में तो इतनी बढ़िया मानी गई हैं कि फिल्म आलोचकों ने इनके सिनेमाई मूल्यों की पुनर्समीक्षा करने का सुझाव दिया है, जैसे भूपेन हज़ारिका की 1956 में बनी पहली फिल्म एरा बटोर सुर (उस वीरान रास्ते का गाना) जिसमें उन्होंने असम की संगीत और संस्कृति को समाहित कर दिया था. इस फिल्म का एक गाना 'बुकु हुम्म- हुम्म करे' का मार्मिक अनुवाद 'दिल हुम्म हुम्म करे' बाद में 'रूदाली' इस हिंदी फिल्म में इस्तेमाल किया गया.

मणिपुर की पहली फिल्म थी 'मातंगी मणिपुर' (आज का मणिपुर) जो 1972 में देव कुमार बोस ने बनाई थी. अब तो कई अन्य बोलियों जैसे कार्बी, मिशिंग, बोडो, रभा, मोनपा और यहाँ तक की चाय बागानों में बोली जाने वाली बोलियों ने भी भारतीय सिनेमा को अभूतपूर्व योगदान दिया है. इस हिस्से ने हमें बेहतरीन फिल्म निर्माता दिए हैं जिन्हें राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर सराहना प्राप्त हुई है. इनमें शामिल हैं, जहानु बरुआ, दिवंगत डॉक्टर भाबेन्द्र नाथ सेकिया (असम), अरिबम श्याम शर्मा (मणिपुर), और भूपेन हज़ारिका. इनमें से कुछ जिन्होंने मुख्य सिनेमा में भी योगदान दिया जैसे डेन्नी डेंज़ोंग्पा, आर डी बर्मन, सलिल चौधरी, इत्यादि के योगदान को यदि लिखा जाए तो पन्ने कम पड़ जाएंगे.

पूर्वोत्तर सिनेमा की मुश्किलें आज भी वही हैं, जो पहले हुआ करती थीं. स्थिति में इतने सालों के बाद भी कोई खास परिवर्तन नहीं आया है. राजस्व की कमी के बावजूद भी यहाँ छोटे बजट की फिल्में बनती हैं, लेकिन यहाँ सिनेमा घरों की कमी है. एक मुश्किल यह भी है कि यहाँ इतनी जातियाँ और भिन्न-भिन्न प्रकार की बोलियाँ हैं कि एक बोली में बनी फिल्म दर्शक वर्ग सिमट जाता है. वह तो हमारे राष्ट्रीय प्रसारणकर्ता दूरदर्शन की नीति भली है जो राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से सम्मानित फिल्मों का प्रसारण कर निर्माताओं को फीस देती है जिससे फिल्मों के दर्शकों में इज़ाफ़ा हुआ है. किन्तु फिर भी पूर्वोत्तर फिल्म निर्माताओं के लिए फिल्में बनाना व्यावसायिक उद्यम से ज़्यादा जूनून है.

हम आशा करते हैं कि हमारी ये सात बहन राज्य अपने सिनेमा को सही स्थान जल्द ही प्राप्त कराने में सफल होंगे.

श्रेया जोशी
हाथरस शाखा, क्षे. का. आगरा

विदेशी फिल्मों का भारत में बाज़ार

कुछ वर्ष पूर्व भारत विश्व में सिनेमा मनोरंजन के उन बड़े बाज़ारों में था जो हॉलीवुड सिनेमा के आक्रमण का डट कर सामना कर रहा था. इसका सबसे बड़ा कारण भारत में स्थापित भारतीय फिल्म इंडस्ट्री (बॉलीवुड) थी. ऐसा नहीं है कि हॉलीवुड फिल्में यहाँ प्रचलित नहीं थी, पर उनको कभी भी व्यापार की दृष्टि से उच्च स्थान प्राप्त नहीं होता था. तथापि पिछले कुछ वर्षों में भारतीय बाज़ार में विदेशी फिल्मों को अपने लिए जगह बनाते हुए देखा जा सकता है. उदाहरण के तौर पर ज्युरासिक वर्ल्ड, फास्ट एंड फ़्यूरियस 7, द जंगल बुक, और मारवल मूवीज़ की सुपरहिट फिल्में जैसे अवेंजेर्स इत्यादि शामिल हैं, जो 100 करोड़ से 150 करोड़ रूपये तक का व्यापार कर चुकी है. और तो और भारतीय सिनेमा बाज़ार की समझ रखने वाले अर्थशास्त्री भी हैरान हुए जब इन फिल्मों का बाज़ार बढ़ने से भारतीय फिल्मों को नुकसान होना तो दूर उल्टा फायदा ही हुआ. फिल्म समीक्षकों का मानना है यदि ज़्यादा से ज़्यादा लोग सिनेमाघरों में आएंगे तो पूरे मनोरंजन जगत के व्यापार में बढ़ोत्तरी होगी, क्योंकि भारत जैसे देश में हर तरह के दर्शक मौजूद हैं जो आजकल मल्टीप्लेक्स के युग में अपनी पसंद के अनुसार सिनेमा देख लेते हैं क्योंकि उनके पास अब विकल्प है. यही कारण है जब हॉलीवुड की फिल्में यहाँ कमाई करने लगी तो बॉलीवुड फिल्मों को किसी भी तरह का नुकसान देखने को नहीं मिला.

इसमें कोई दो राय नहीं है कि हॉलीवुड की फिल्में काफी बड़े बजट की होती हैं और उनकी फिल्मों में स्पेशल इफेक्ट्स का खास तरह से इस्तेमाल किया जाता है, इस वजह से उनका स्तर काफी अच्छा होता है जो आजकल की युवा जेनरेशन को बहुत ज़्यादा आकर्षित करती हैं. समय के साथ-साथ अब इन फिल्मों की कहानियाँ केवल अमेरिकन परिपेक्ष्य तक सीमित नहीं रह गयी है, अब उनके विषयों में एक वैश्विक दृष्टिकोण सम्मिलित है जिससे भारतीय दर्शक भी स्वयं को जोड़ कर देख सकते है. विदेशी फिल्मों के भारत में आने से देशी फिल्मों ने भी अपने स्तर में काफी सुधार करते हुये 'बाहुबली' जैसी फिल्में बनायी हैं, इस तरह की प्रतिद्वंदिता मनोरंजन व्यापार में एक क्रांति की तरह है, जिसमें कंटेंट केवल एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है बल्कि वैश्विक है. हालांकि ये सभी चीजें विदेशी फिल्मों में पहले भी मौजूद थीं, पर व्यापार में अचानक से इस तरह का बदलाव पहले नहीं देखा गया था. अब सिनेमाघरों में विदेशी फिल्मों के बड़े-बड़े पोस्टर्स व ट्रेलर्स, टीवी में आने वाले विज्ञापन देखें जा सकते हैं जो एक बड़ा कारण है इन विदेशी फिल्मों के भारत में बढ़ते व्यापार का.

भारतीय भाषाओं में डबिंग : एक वक़्त था जब विदेशी फिल्में देखने ज़्यादातर उच्च वर्ग के लोग जाया करते थे क्योंकि लगभग विदेशी फिल्में बस अंग्रेजी भाषा में हुआ करती थीं. वक़्त के साथ-साथ हिन्दी डबिंग का दौर चला जिससे विदेशी फिल्मों को पहले के दौर से अधिक फायदा हुआ. भारत का मध्यम वर्ग इससे बहुत आकर्षित हुआ, डाइलॉग्स का हिन्दी अनुवाद भारतीय वास्तविकता को ध्यान में रख कर किया जाने लगा. जिसे लोगों ने अपनी समझ के अनुसार स्वीकार कर लिया. परंतु विदेशी फिल्मों का व्यापार एकाएक तब और अधिक बढ़ गया जब डबिंग के लिए अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग शुरू हुआ. इन भाषाओं में तमिल और तेलुगू से शुरुआत हुई जिससे व्यापार में खासी बढ़ोतरी हुई, पिछले वर्ष ज्युरासिक वर्ल्ड और फ़्यूरियस 7 की सफलता और स्टार वार्स : द फोर्स अवेकन्स की असफलता इसका बड़ा उदाहरण हैं. और अब तो बंगाली, कन्नड़, मराठी और यहाँ तक भोजपुरी में भी डबिंग होने लगी है.

भारतीय कलाकारों को विदेशी फिल्मों में स्थान : 'फ़्यूरियस 7' में अली फज़ल, 'ज्युरासिक वर्ल्ड' में इरफान खान, 'बेवॉच' में प्रियंका चोपड़ा, 'ट्रिपल एक्स' में दीपिका, 'मिशन इम्पॉसिबल' में अनिल कपूर, यहाँ तक कि अमिताभ बच्चन ने भी 'द ग्रेट गैट्स्बि' जैसी फिल्म में काम किया है. ये सारी फिल्में पिछले 3-4 सालों में आयीं, और इन कलाकारों को भारत में इन फिल्मों के व्यापार में हुयी बढ़त का थोड़ा श्रेय अवश्य ही दिया जाना चाहिए. ये फॉर्म्यूला हॉलीवुड के लिए आसान भी है और बहुत अधिक कारगर भी. भारत में लोग सिनेमा के दीवाने हैं और अपने सितारों के प्रति उनका प्रेम अक्सर व्यापार में भी झलकता है. यही कारण है कि आने वाले वर्षों में कई ऐसी विदेशी फिल्में प्रदर्शित होंगी, जिनमें भारतीय मूल के या बॉलीवुड सितारों को अभिनय करते देखा जा सकेगा. एक और तरीका है जो कारगर सिद्ध हो रहा है वह है भारत में कुछ सीन की शूटिंग या फिल्म में भारत अथवा भारतीयता की झलक.

अमेरीकन और ब्रिटिश फिल्मों के अलावा अन्य देशों की फिल्में : एक ओर जहां अँग्रेजी सिनेमा के व्यापार में भारत में वृद्धि हो रही है, वहीं अन्य देशों की फिल्में भारतीय बाज़ार में कहीं भी जगह नहीं बना पा रहीं हैं. हालांकि कुछ तबके हैं जिनमें से एक तबका, जिन्हें फ्रेंच और कोरियन सिनेमा की नयी तरह की कहानियों में रुचि है तो दूसरे एक तबके को हांगकांग और थाई सिनेमा की मारधार में. पर इनमें से कोई भी फिल्में न भारत में अपना प्रचार करती हैं और न ही इनकी पहुँच भारतीय दर्शकों में टीवी के अलावा कहीं है. अगर इन विदेशी फिल्मों को भारत में पैसा कमाना है तो इन्हें भी हॉलीवुड की तर्ज़ पर प्रचार और डबिंग में ध्यान देना होगा.

नितेश पाठक
सुकुलदेहान शाखा, क्षे.का., रायपुर

सफरनामा - पंजाबी फिल्मों का

पंजाबी फिल्मों के बनने का सिलसिला 1928 में आरंभ हुआ था. **'आज की बेटी' जो कि मूक फिल्म थी,** इसे पहली बार पर्दे पर दिखाया गया. इसके 4 साल बाद 'हीर राँझा' नामक फिल्म को रिलीज किया गया जो कि पहली पंजाबी सवाक फिल्म थी. यह 1932 में पर्दे पर दिखाई गयी.

फिर पंजाबी फिल्मों के बनने का सिलसिला शुरू हुआ और एक के बाद एक फिल्में बनने लगी. नई-नई फिल्मों का उत्पादन हुआ और कई हिन्दी फिल्मी सितारे पंजाबी फिल्मों की तरफ आकर्षित हुए.

इतिहास : आज के पाकिस्तान स्थित लाहौर में पंजाबी फिल्में बनने की शुरुआत हुई थी. लाहौर उस समय पंजाबी सिनेमा का गढ़ था. उस समय लाहौर में नौ सिनेमा घर थे, इन सिनेमाघरों में दिखाई गई फिल्में ज़्यादातर बॉम्बे और कलकत्ता में या हॉलीवुड और लंदन से उत्पादित की गयी होती थी.

इस समय तीन व्यक्ति अब्दुर राशिद करदार जो कि एक व्यावसायिक सुलेखकार रचयिता थे. इनके साथ मोहम्मद इस्माइल और जी.के. मेहता थे. जिन्होंने अपना सारा सामान बेचकर यूनाइटेड प्लेयर्स कार्पोरेशन नाम पर स्टुडियो और एक प्रॉडक्शन कंपनी का निर्माण किया जो 1928 के लाहौर के राम रोड पर स्थित थी.

इन तीनों पर अंग्रेज़ी फिल्मों का प्रभाव था. जिनमें उस समय आवाज़ भी होती थी. ये भी चाहते थे कि एक ऐसी फिल्म बने जिसमें आवाज़ भी हो. सन 1932 में इनकी मेहनत के फलस्वरूप 'हीर राँझा' फिल्म रिलीज हुई जिसमें आवाज़ भी थी. यह फिल्म हाकिम राम प्रसाद द्वारा उत्पादित थी.

इंदिरा मूवी टोन द्वारा निर्मित कृष्ण देव मेहरा जी की पहली फिल्म 'पिंड दी कुड़ी' जिसे 1935 में रिलीज किया गया. यह फिल्म कलकत्ता में बनी और लाहौर में रिलीज हुई. इस समय की महान अदाकारा एवं गायिका नूर जहां ने इस फिल्म में काम किया था और अपनी अदाकारी और आवाज़ के जलवे बिखेरे थे.

'पिंड दी कुड़ी' बड़ी सफल फिल्म साबित हुई. इसके बाद मदन मोहन मेहरा और केडी मेहरा ने एक नई फिल्म 'हेर सियाल' 1938 में बनाई. जिसकी सफलता ने बॉम्बे और कलकत्ता के कलाकारों, संगीतकारों और तकनीकी स्टार को लाहौर की तरफ आकर्षित कर दिया.

इसके बाद शांता आपटे, मोतीलाल, चंद्र मोहन, हीरालाल, नूरजहां, मुमताज़ शांति, वली, सैयद अताउल्लाह शाह हाशिम, कृष्णा कुमार, शंकर हुसैन और बलदेव राज चोपड़ा आदि ने लाहौर में पंजाबी इंडस्ट्री में काम करना शुरू कर दिया.

भाटी गेट, लाहौर में एक मशहूर जगह है, जिसे उल्लेखनीय कलाकारों और लेखकों का निर्माण करने के लिए जाना जाता था.

1947 में भारत और पाकिस्तान का विभाजन हो गया. कुछ कलाकार भारत और कुछ कलाकार पाकिस्तान में ही बस गए. 1947 में ब्रिटिश राज्य का पंजाब, भारत और पाकिस्तान इन दो हिस्सों में बंट गया. पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान और पूर्व पंजाब भारत के हिस्से आया.

सरहदें बन जाने के कारण हुनर भी दो भागों में बंट गया. भारतीय कलाकार, संगीतकार, निर्देशक, गायक सब बॉम्बे फिल्म में काम करने को बाध्य रह गए, जिनमें से के.एल. सहगल, दिलीप कुमार, पृथ्वीराज कपूर, देव आनंद और गायक मोहम्मद रफी, नूर जहां, शमशाद बेगम आदि प्रमुख थे.

आजादी के बाद पंजाबी फिल्म जगत को सक्रिय रखा गया और कुछ काबिल ए तारीफ़ फिल्में बनी जैसे 'पोस्टी', 'दो लच्छियां' और 'भंगड़ा' आदि. जिनके गाने रेडियो के माध्यम से दर्शकों के कानों में गूँजते रहे.

1964 में बड़ी लागत से बनी फिल्म रिलीज की गयी. जिसका नाम 'सतलुज दे कंडे' पद्म प्रकाशन माहेश्वरी द्वारा निर्देशित थी. इस फिल्म में बलराज साहनी, निशी, वस्ती और मिर्ज़ा मुशर्रफ जैसे हुनरमंद कलाकारों ने काम किया. हंसराज बेहल ने इस फिल्म को संगीत दिया था. यह फिल्म बहुत बड़ी हिट साबित हुई और इसने राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार भी अर्जित किया.

1969 में फिल्म 'नानक नाम जहाज' जिसमें पृथ्वी राज कपूर, आई.एस जौहर, विम्मी, सोम दत्त, निशी, सुरेश और डेविड अब्राहम आदि कलाकारों ने बेहतरीन अभिनय किया. विभाजन के बाद की यह सबसे सफल फिल्म थी. जिसमें भारत और विदेशों में रह रहे पंजाबियों का रहन सहन और संस्कृति को बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया गया था.

1970 से 1975 का सफर : नानक नाम जहाज फिल्म की सफलता के बाद पंजाबी फिल्में बड़ी संख्या में बनने लगी. एक बार फिर हिन्दी कलाकार, पंजाबी फिल्मों की तरफ आकर्षित हो गए. 'कंदा दे ओहले' फिल्म में धर्मेन्द्र, आशा पारेख और रवीन्द्र कपूर जैसे कलाकारों ने अभिनय किया.

इस समय के दौरान 'मेले मित्रां दे', 'मन जीते जग जीत', 'दो शेर', 'दुख भंजन तेरा नाम' आदि सफल फिल्में बनीं. 'दुख भंजन तेरा नाम' एक धार्मिक फिल्म थी. जिसमें धर्मेन्द्र, सुनील दत्त, जॉनी वाकर, दारा सिंह, रणजीत, राजेन्द्र कुमार आदि सितारों ने बेहतरीन अभिनय किया जो फिल्म सुपरहिट साबित हुई.

पंजाबी फिल्मों के सुपरस्टार वीरेंद्र जो कि धर्मेन्द्र के चचेरे भाई थे. पहली बार 'तेरी मेरी इक जिंदड़ी' फिल्म के जरिए 1975 में पर्दे पर आए.

1976 से 1990 का सफर : 1976 में बहुतायत मात्रा में फिल्में रिलीज हुई, जैसे 'दाज़', 'गिद्दा', 'मैं पापी तु बखशतहार', 'पापी तारे अनेक', 'संतों वंतों', 'सरदार-ए-आजम', 'ताकरा', 'सवा लाख से एक लाड़न' और 'यमला जाट'. 'सवा लाख से एक लाड़न' 1976 की सबसे बड़ी फिल्म थी, जिसमें दारा सिंह के साथ राजेश खन्ना ने भी अभिनय किया था. यह 1976 की सबसे सफल फिल्म थी.

1980 में पंजाबी फिल्म इंडस्ट्री अपने चरम पर थी. राष्ट्रीय पुरस्कार जीतने वाली पहली पंजाबी फिल्म 'चैन परदेसी' को 1980 में रिलीज किया गया था. मुल्क राज भाखरी के निर्देशन में बनी फिल्म 'भंगड़ा' का रीमेक बना. जिसका नाम 'जट्टी' रखा गया. फिल्म 1958 की 'भंगड़ा' से भी ज़्यादा हिट हुई.

'बलबीरो भाभी' 1981 की एक मात्र सफल फिल्म थी. जिसमें वीरेंद्र मुख्य भूमिका में थे.

गुरदास मान पंजाबी फिल्म इंडस्ट्री का जाना माना नाम है जिन्होंने 1985 में 'उच्चा दर बाबे नानक दा' से अपना फिल्मी सफर आरंभ किया. इससे पहले गुरदास मान पंजाबी लोक गायक के रूप में प्रसिद्ध थे. इस फिल्म की सफलता ने गुरदास मान को पंजाबी फिल्म इंडस्ट्री का चमकता सितारा बना दिया.

1986 में बनी फिल्म 'लौंग दा लशकारा' सफल रही. 1987 में 'जटते जमीन' फिल्म जिसमें वीरेंद्र काम कर रहे थे, को शूटिंग के दौरान गोली मार दी गई और कुछ ही समय में वीरेंद्र ने इस दुनिया को अलविदा कह दिया. यह घटना

पंजाबी सिनेमा के लिए एक बहुत बड़ा झटका था. वीरेंद्र ने अपनी अदाकारी के दम पर अपनी एक अलग पहचान बनाई थी.

वीरेंद्र की मौत के बाद दूसरे बहुत सारे कलाकारों के लिए पंजाबी फिल्म जगत के दरवाजे खुल गए. गुग्गु गिल, योगराज सिंह ने अपनी फिल्मी कैरियर की नई शुरुआत का सफर आरंभ किया.

1990 में प्रीति सप्रू के निर्देशक में बनी कुरबानी जट्ट दी' - जिसमें गुग्गु गिल, योगराज सिंह, राज बब्बर और गुरदास मान के साथ प्रीति सप्रू ने खुद भी अभिनय किया था. बाद में यह एक सुपरहिट फिल्म साबित हुई.

और फिर दुश्मनी दी अग्ग जो वीरेंद्र की आखिरी फिल्म थी रिलीज हुई और उस फिल्म ने अपार सफलता प्राप्त की.

1991 से 2000 का सफर : 1991 से पहले गुग्गु गिल की फिल्मों में खलनायक की भूमिका निभाने वाले कलाकारों के रूप में छवि बनी हुई थी. 2000 में बनी एक फिल्म खालसा मेरो रूप है खास' में उन्होंने कहानी, अभिनय और निर्देशक के बदौलत पर्दे पर उतारा गया. इसे मात्र विदेशों में सफलता मिली और अपने ही देश में यह असफल रही.

2000 और 2001 में कुछ खास फिल्में नहीं बनी.

2002 में जी आया नु' फिल्म से पंजाबी इंडस्ट्री में हलचल मच गयी. एक गायक से अभिनेता बने हरभजन मान ने इस फिल्म में गज़ब का अभिनय किया. इसे पंजाब में बहुत प्यार मिला. इस फिल्म के निर्देशक मनमोहन सिंह थे.

क्रमश: 2003 और 2004 में बनी फिल्में बदला' और 'अस्सा नु माण वतना दा' ने अपार सफलता अर्जित की जिसमें हरभजन ने उम्दा अभिनय किया और मनमोहन सिंह ने उम्दा निर्देशन किया.

2005 और 2006 में जीजा जी, देश होया परदेस, में तू अस्सी तुस्सी, यारा नाल बहारां आदि थी. 2006 में रिलीज हुई गुरदास मान की बेहतरीन अदाकारी और गायकी से सजी फिल्म वारिस शाह' जिसे दर्शकों में बेहत पसंद किया.

2008 में 'मिट्टी बाजां मारदी' द्वारा फिर एक बार हरभजन मान और मनमोहन सिंह की जोड़ी पर्दे पर उतरी, जिसने पंजाबी सिनेमा को अगले पायदान पर ला खड़ा किया.

बब्बू मान, पंजाब और उत्तर भारत में एक जाना माना नाम है. बब्बू मान की हशर' जिसमें उनके अलावा गुरलीन चोपड़ा भी थी. जिन्होंने गज़ब की अदाकारी की, इस फिल्म के गाने इतने मशहूर हुए कि आज भी वे लोगों के दिल की धड़कन है. मूल रूप से बब्बू मान पंजाबी गायक है जो कि नौजवानों में बहुत पसंद किए जाते हैं, उन्होंने कुछ हिन्दी फिल्मों में भी अपनी आवाज़ का जादू बिखेरा है.

2010 में बनी फिल्मों में कुछ पंजाबी गायक, कुछ हिन्दी कलाकार जैसे जिप्पी गरेवाल और जिम्मी शेरगिल आदि ने पंजाबी फिल्मों में काम किया मेल करादे रब्बा' 2010 की सुपर हिट फिल्म रही. 2010 में सुखमनी (the son of soil) आदि कुछ सफल फिल्मे बनी.

2011 से आज तक का सफर : 2011 में एक फिल्म रिलीज हुई 'छेवां दरिया' इस फिल्म का निर्देशन अभिजीत ने किया था. जो कि पहली निर्देशक महिला थी, जिसने किसी पंजाबी फिल्म का निर्देशन किया. 2011 पंजाबी फिल्मों के लिए एक सफल वर्ष था जिसमें कुछ बेहतरीन कहानियों को पर्दे पर जीवित किया गया.

कुछ रचनात्मक फिल्में जैसे 'दो लायन ऑफ पंजाब' जिसमें सुपरस्टार दिलजीत दोसांझ ने काम किया था, धरती' जिसमें जिम्मी शेरगिल और रणविजय ने अभिनय किया था, कुछ बेहतरीन फिल्में थी.

2011 में ही बनी 'जिने मेरा दिल लुटिया' जिप्पी गरेवाल, दिलजीत, नीरू बाजवा और जसविंदर भल्ला की उम्दा अदाकारी के दम पर सुपरहिट साबित हुई. इस फिल्म से डांस, अच्छे गाने और दमदार अदाकारी की अनुभूति होती है.

2011 को एक और फिल्म यार अनमुले' भी चर्चा का विषय रही. 2012 पंजाबी सिनेमा का स्वर्ण युग कहा जा सकता है. हॉलीवुड स्टाइल में बनी मिर्जा', जिसकी लागत करीब 9 करोड़ थी. पंजाब की सबसे महंगी और चर्चित फिल्म बनी.

2012 में ही रिलीज हुई फिल्म जट्ट एंड जूलियट' जिसमें दिलजीत दोसांझ और नीरू बाजवा ने अपनी अदाकारी से इस फिल्म में जान डाल दी और इस फिल्म ने कई नये कीर्तिमान अपने नाम कर लिए. इसी वर्ष रिलीज हुई जिप्पी गरेवाल, अभिजीत की कैरी ऑन जट्टा' शायद इस वर्ष सर्वाधिक बार देखे जाने वाली फिल्म थी. जिसमें हास्य, व्यंग गीत-संगीत, सब का बेमिसाल मिश्रण है. 2012 में पंजाबी सिनेमा ने नई उचाइयों को छुआ.

अगस्त 2012 में अंतर्राष्ट्रीय फिल्म अकादमी पुरस्कार का आयोजन कैनडा में हुआ. जोकि पंजाबी सिनेमा के लिए बड़े गर्व की बात थी.

2013 भी 2012 की तरह पंजाबी इंडस्ट्री के लिए एक सफल वर्ष रहा. 2013 में जट्ट एंड जूलियट-2' जोकि पाकिस्तान में भी रिलीज की गई, नए कीर्तिमान स्थापित कर गई.

2013 की कुछ और सफल फिल्मों में पाजी इन प्रॉबलम', साडी लव स्टोरी', जट्ट इन गोलमाल', तू मेरा 22 में तेरा 22' आदि फिल्में चर्चित रही. 2014 की चार साहिबजादे' जो 3डी (3ऊ) में बनी पंजाब की पहली फिल्म थी, इसमें सिक्खों के दसवें गुरु गोबिन्द सिंह और उनके चार बच्चों जिन्हें चार साहिबजादे कहा जाता है कि जीवन गाथा, बलिदान, त्याग, वेदना विरह आदि पर आधारित एक बहुत ही संवेदनशील फिल्म है. पंजाब के इलावा उत्तर भारत के कई राज्यों में यह फिल्म रिलीज की गई. कुछ और फिल्में इस वर्ष चर्चा का विषय बनी, जिनमें कौम दे हीरे', हुण में किसनू वतन कहूँगा', सिमरन', दिल-विल प्यार व्यार' आदि मुख्य थी.

2015 में सरदार जी' नमक फिल्म ने सबका ध्यान अपनी तरफ खींचा. दिलजीत, नीरू बाजवा ने इस फिल्म में बेहतरीन अभिनय से सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया. यह फिल्म निर्देशकों के लिए मील का पत्थर' साबित हुई.

दूसरी ब्लॉकबस्टर फिल्म अंग्रेज़' बनी. जिसके अदाकार अमरिंदर गिल, सरगुन मेहता, अदिति शर्मा और बिन्नू ढिल्लों थे.

2016 में 41 पंजाबी फिल्में रिलीज की गयी जिनमें से 'सरदार जी 2', 'लव पंजाब', 'चन्नों', 'कमली यार दी', 'कप्तान', 'साडे सीएम साहिब', 'बाम्बूकाट', 'निक्का जैलदार' आदि मुख्य थीं.

2017 में कुछ बेहतरीन फिल्में जैसे 'सुपर सिंह', 'मंजे बिस्तरे', 'जिन्दुआ', 'लाहोरिये', 'सरगी', 'साब बहादुर', 'सरवन', 'रब्ब दा रेड़ियों', निक्का जैलदार 2' ने सबका दिल मोह लिया.

2018 में विश्व युद्ध 1 पर आधारित फिल्म 'सज्जन सिंह रंगरूट' बनी जो कि पंजाबी सिनेमा का एक नया पायदान पार कर चुकी है. इसके बाद 'कैरी ऑन जट्टा-2', 'लांग लाची' कुछ बेहतरीन फिल्मे बनी.

1928 से 2018 तक के सफर में पंजाबी फिल्म इंडस्ट्री ने कई प्रकार की फिल्मों का निर्माण किया.

ज़्यादातर पंजाबी फिल्मों के कलाकार पंजाबी गायक है. जिन्होंने पंजाबी सिनेमा के पर्दे पर अपना हाथ आजमाया और निखर कर सामने आए. पंजाबी फिल्म इंडस्ट्री ने बहुत से नए कलाकारों को जन्म दिया है. जो आज देश विदेश में धूम मचा रहे है और आगे भी मचाते रहेगें.

देविंदर कुमार
मानसा शाखा, लुधियाना

राजभाषा पुरस्कार

पुरस्कार हमारे

राजभाषा के क्षेत्र में श्रेष्ठ कार्य निष्पादन हेतु दि. 09.05.2018 को नराकास (बैंक) विजयवाड़ा की बैठक में श्री पी श्रीनिवासा रेड्डी, नराकास अध्यक्ष एवं श्री टेकचंद, उप निदेशक, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा तृतीय पुरस्कार प्राप्त करते हुए, डॉ. के रवीन्द्रनाथ, उप महाप्रबन्धक, नोक्षेका, विजयवाड़ा एवं श्री कृष्णा साव, राजभाषा अधिकारी, नोक्षेका, विजयवाड़ा.

क्षेत्रीय कार्यालय, महेसाणा की अधीनस्थ शाखा हिम्मत नगर को वर्ष 2017–2018 में राजभाषा के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ कार्य निष्पादन हेतु नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ. इस अवसर पर पुरस्कार ग्रहण करते हुए, शाखा प्रमुख, हिम्मत नगर, श्री जगदंबा प्रसाद साहू एवं राजभाषा अधिकारी, डॉ. मनीषा, क्षेत्रीय कार्यालय, महेसाणा.

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक), मेरठ द्वारा दिनांक 28.05.2018 को चेंबर ऑफ कॉमर्स, मेरठ में तेहरवीं अर्धवार्षिक राजभाषा समीक्षा बैठक का आयोजन किया गया. इस बैठक में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय भारत सरकार, गाज़ियाबाद कार्यालय से उपनिदेशक श्री के.पी.शर्मा ने सहभागिता की. बैठक में राजभाषा के क्षेत्र में अच्छा कार्य करने के लिए हमारे क्षेत्रीय कार्यालय, मेरठ को वर्ष 2017–18 हेतु तृतीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया. शील्ड एवं प्रमाण पत्र ग्रहण करते हुए उप क्षेत्र प्रमुख श्री वी.के. सयाना (एवं राजभाषा अधिकारी, श्री दीपक कुमार.)

दिनांक 29.05.2018 को नराकास (बैंक) बेलगावी की 13वीं अर्ध–वार्षिक बैठक के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में वर्ष 2017–18 का तृतीय पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र क्षेत्रीय कार्यालय, बेलगावी को प्रदान किया गया. पुरस्कार प्राप्त करते क्षेत्र प्रमुख श्री सर्वेश रंजन एवं साथ में राजभाषा अधिकारी, श्री सिद्धार्थ शेखर.

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (बैंक) कोलकाता द्वारा हमारे क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता को वित्तीय वर्ष 2015–16 हेतु प्रथम एवं 2016–17 हेतु तृतीय पुरस्कार ग्रहण करते हुए उप क्षेत्र प्रमुख, श्री सिबील प्रधान तथा राजभाषा अधिकारी, सुश्री श्वेता सिंह.

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, हैदराबाद द्वारा क्षेत्रीय कार्यालय, हैदराबाद को प्रथम पुरस्कार दिया गया, पुरस्कार ग्रहण करते हुए उप क्षेत्र प्रमुख, श्री आर रंगय्या (एवं राजभाषा अधिकारी, प्रिया सेठ.)

प्रेरणा स्रोत...

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोल्हापुर द्वारा 06.06.2018 को हमारे क्षेत्रीय कार्यालय, कोल्हापुर को वित्तीय वर्ष 2017–18 हेतु प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया. इस अवसर पर पुरस्कार ग्रहण करते हुए, उप क्षेत्र प्रमुख, श्री रघुनाथ रेड्डी तथा राजभाषा अधिकारी, श्री राधा रमन शर्मा.

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, रीवा मध्य प्रदेश की दिनांक 27 जून, 2018 की बैठक में वित्तीय वर्ष 2017–18 में उत्कृष्ट राजभाषा कार्यान्वयन के लिए श्री हरीश सिंह चौहान, सहायक निदेशक, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय (मध्य) द्वारा क्षेत्रीय कार्यालय रीवा को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया. पुरस्कार स्वीकार करते हुए क्षेत्र प्रमुख, रीवा, श्री महेंद्र श्रीवास्तव एवं राजभाषा प्रभारी, श्री अखिलेश कुमार सिंह.

दि. 23.05.2018 को आयोजित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कानपुर की छमाही बैठक में वर्ष 2017–18 में बैंक में राजभाषा के उत्कृष्ट कार्यान्वयन हेतु क्षेत्रीय कार्यालय, कानपुर को तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ. पुरस्कार श्री अजय मलिक, उप निदेशक, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय एवं नराकास अध्यक्ष श्री एस के काला द्वारा प्रदान किया गया. क्षेत्र प्रमुख, श्री एस के सिंह एवं राजभाषा अधिकारी, श्री प्रदीप कुमार त्रिवेदी पुरस्कार ग्रहण करते हुए.

क्षेत्रीय कार्यालय, करनाल को दिनांक–12.06.2018 को नराकास, करनाल से राजभाषा कार्यान्वयन हेतु प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया. गृह मंत्रालय के प्रतिनिधि, श्री प्रमोद कुमार शर्मा के कर कमलों से प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते हुए, क्षेत्र प्रमुख, श्री नवनीत कुमार एवं राजभाषा प्रभारी, श्री संजीव कुमार.

दिनांक 28.05.2018 को आयोजित छमाही बैठक में हमारी मडगांव शाखा को वर्ष 2017–18 हेतु राजभाषा कार्यान्वयन में उत्कृष्ट कार्य करने हेतु नराकास मड़गांव से तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ. सदस्य सचिव श्री प्रेम प्रकाश, (उप खान नियंत्रक), भारतीय खान ब्यूरो से पुरस्कार प्राप्त करते हुए, श्री सुजीत पांगति, उप शाखा प्रबन्धक, मडगांव शाखा एवं श्री ललित सानप, प्रबन्धक (राजभाषा).

क्षेत्रीय कार्यालय, मैंगलोर को वर्ष 2017–18 के दौरान उत्कृष्ट राजभाषा कार्यान्वयन के लिए नराकास मैंगलोर की तरफ से तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ. मैंगलोर नराकास संयोजक कॉर्पोरेशन बैंक के प्रबंध निदेशक व मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री जयकुमार गर्ग व उप निदेशक(गृह मंत्रालय) श्री टेकचंद ने अपने कर कमलों से क्षेत्र प्रमुख, श्री टी. नञ्जुंदप्पा व राजभाषा प्रभारी, श्री दीपक कुमार को शील्ड व प्रमाणपत्र देकर सम्मानित किया. साथ में हैं कॉर्पोरेशन बैंक के महाप्रबंधक, श्री श्रीवास्तव व नराकास के सदस्य सचिव, सहायक महाप्रबंधक(राजभाषा), श्री अंबरीश कुमार सिंह.

सिने जगत के प्रसिद्ध स्टुडियो

फिल्म जगत को याद करते ही मन में स्वप्न नगरी मुंबई का नाम याद आता है. यह ऐसी नगरी है जहाँ पर युवा अपनी किस्मत आजमाने के लिए तरह-तरह के स्वप्न व उमंग मन में लिये चले आते हैं. आज हम बात करेंगे मुंबई के ऐसे ही प्रसिद्ध स्टुडियो की, जिन्होंने गुमनाम व्यक्तियों को शोहरत, प्रसिद्धि और समृद्धि के शिखर पर पहुंचा दिया.

हिन्दी सिनेमा की बात करें और **दादा साहेब फाल्के** का नाम न लें यह संभव नहीं है. भारतीय सिनेमा के पितामह दादा साहेब फाल्के ने 1913 में पहली भारतीय फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई थी. उस समय उन्होंने अपने घर में एवं दादर के एक स्टुडियो में नाटक के लकड़ी वाले सेट लगाकर शूटिंग की. यह मूक फिल्मों का दौर था और इसमें तकनीकी रूप से अनेक कठिनाइयाँ आईं.

प्रभात फिल्म कम्पनी

इसे प्रभात फिल्म्स के नाम से जाना जाता था. 1929 में वी शांताराम ने एक फिल्म स्टुडियो की स्थापना की और इसी के बाद से सवाक फिल्म के युग की शुरुआत हुई. पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' थी जो कि 1931 में रिलीज हुई. यह स्टुडियो कोल्हापुर में था. 1933 में इसे पुणे में स्थानांतरित किया गया. आप यह जानकर आश्चर्यचकित हो जाएंगे कि इसी परिसर में आज फिल्म और टेलीविजन इंस्टिट्यूट ऑफ इंडिया स्थित है.

फेमस स्टुडियो

देश के बंटवारे के समय यह रुंगटा परिवार की संपत्ति थी. यहाँ 'प्यासा', 'नीलकमल', 'सीआईडी' जैसी अनेक फिल्मों की शूटिंग हुई थी. यहाँ अब टीवी कार्यक्रम एवं विज्ञापनों की शूटिंग होती है. एक और नया काम फेमस स्टुडियो में होने लगा है और वह है फिल्मों का रिस्टोरेशन. 'पाकीजा', 'मिस्टर इंडिया', 'शोले', 'वो सात दिन' जैसी फिल्मों का रिस्टोरेशन यहीं किया गया है.

राजकमल कला मंदिर

यह एक प्रसिद्ध फिल्म प्रोडक्शन फिल्म कम्पनी है जिसकी स्थापना 1929 में कोल्हापुर में हुई थी. फिर यह स्टुडियो पुणे में स्थानांतरित हुआ तथा अंततः 1942 में वाडिया मूवीटोन के परिसर में मुंबई में स्थापित हुआ. इस स्टुडियो ने वाडिया ब्रदर्स की 'हंटरवाली' (1935), 'शकुंतला' (1943), 'डॉ. कोटनीस की अमर कहानी' (1946), 'झनक-झनक पायल बाजे' (1955), 'दो आँखें बारह हाथ' (1957) इत्यादि कई बेहतरीन फिल्में जनता तक पहुंचाकर सराहना प्राप्त की.

बांबे टॉकीज

फिल्म जगत का सबसे पुराना स्टुडियो है बांबे टॉकीज, जिसकी स्थापना 1934 में मुंबई के मलाड में की गयी थी. इस स्टुडियो की स्थापना हिमांशु राय एवं देविका रानी द्वारा की गयी थी. 1940 में होने हिमांशु राय की मृत्यु के बाद देविका रानी ने इस स्टुडियो को अकेले ही चलाया एवं अशोक कुमार इसके प्रमुख अभिनेता 1943 तक बने रहे. देविका रानी की मृत्यु के पश्चात अशोक कुमार एवं सशधर मुखर्जी ने इस स्टुडियो को 1954 तक चलाया, तत्पश्चात् यह स्टुडियो बंद हो गया. अपने जमाने का यह आधुनिक स्टुडियो कहलाता था जिसमें यूरोपीयन पद्धति से बने हुए साउंड एवं इकोप्रूफ मंच, प्रयोगशालाएं, एडिटिंग रूम, प्रीव्यू थिएटर्स आदि थे. 'जवानी की हवा' (1935), 'जीवन नैया' (1936) एवं विख्यात फिल्म अछूत कन्या इस स्टुडियो की कुछ मशहूर फिल्में हैं. देविका रानी का नेतृत्व बहुत सुदृढ़ रहा और अच्छे मूल्यों के साथ स्टुडियो को उन्होंने आगे बढ़ाया. 'कंगन', 'बंधन' एवं 'किस्मत' कुछ अन्य प्रसिद्ध फिल्में हैं जो देविका रानी के कुशल निर्देशन का प्रतिफल थीं. किस्मत ने तब तक की सभी फिल्मों के रिकार्ड तोड़ते हुए कोलकाता के प्रोक्सी टॉकीज में लगातार साढ़े तीन वर्षों तक प्रदर्शित होकर कीर्तिमान स्थापित किया.

मेहबूब स्टुडियो

बांद्रा जैसे महंगे इलाके में मेहबूब खान द्वारा 1954 में इस स्टुडियो की स्थापना की गयी थी. स्टुडियो की मशहूर फिल्में हैं, गुरु दत्त की 'कागज के फूल', देवानंद के नवकेतन फिल्म के बैनर तले बनी फिल्में जैसे 'हम दोनों' और 'गाइड', मेहबूब खान की स्वयं की 'पैसा ही पैसा' और 'अंदाज'. वर्ष 1957 में आई 'मदर इंडिया' ने कई पुरस्कार प्राप्त कर नये कीर्तिमान स्थापित किये.

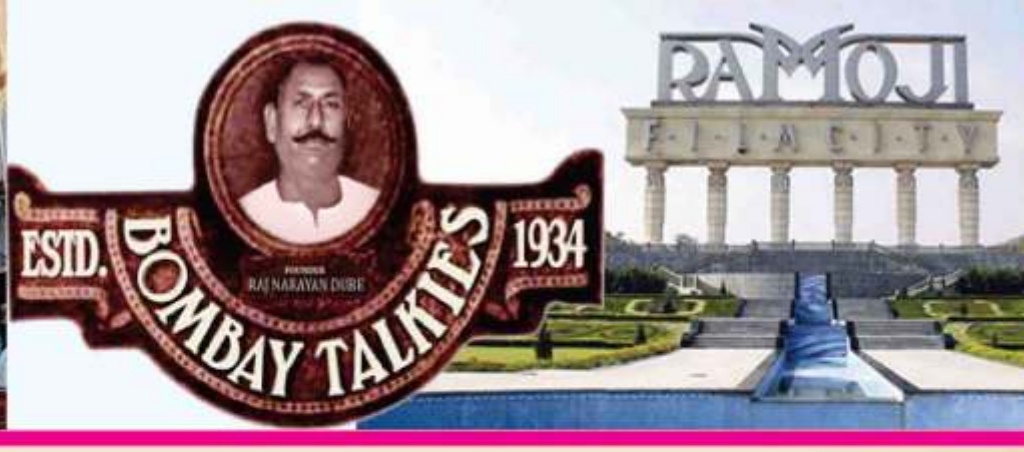

फिल्मालय स्टुडियो

मुंबई के अंधेरी में 1958 में इस स्टुडियो की स्थापना हुई. 'लव इन शिमला', 'लीडर' जैसी फिल्मों की शूटिंग हुई. एक जमाने में इस स्टुडियो में घोड़े, बाग, शेर जैसे जानवर भी शूटिंग के लिए उपलब्ध थे. भट्ट कैंप की ज्यादातर फिल्मों की शूटिंग यहीं पर हुई है.

नटराज स्टुडियो

1968 में पहले मोडर्न स्टुडियो के नाम से पहचाने जाने वाले स्टुडियो को शक्ति सामन्त, आत्माराम, प्रमोद चक्रवर्ती, रामानंद सागर और एफ.सी. मेहरा ने खरीदा और नाम दिया नटराज स्टुडियो. 'आराधना', 'आरजू', 'जुगनू', 'तुमसे अच्छा कौन है', 'बारूद' जैसी फिल्मों की शूटिंग यहीं पर हुई. परंतु 2000 में आर्थिक तंगी की वजह से यह स्टुडियो बिक गया.

आर.के. फिल्म्स

यह कपूर परिवार द्वारा स्थापित एक महत्वपूर्ण स्टुडियो है. इसकी स्थापना 1948 में मुंबई के चेंबूर क्षेत्र में फिल्म जगत के शो मैन कहलाने वाले राज कपूर ने की थी. इस स्टुडियो में पहली फिल्म 'आग' (1948) शूट की गयी थी. यह फिल्म अधिक प्रसिद्धि तो न पा सकी किंतु स्टुडियो चल निकला और आगे चलकर 'बरसात', 'आवारा', 'बूट पालिश', 'श्री 420', 'जागते रहो' जैसी नायाब फिल्मों की शूटिंग यहीं पर हुई जो कि आज भी दर्शकों के मनोमस्तिष्क में बसी हुई हैं.

कमाल अमरोही स्टुडियो

श्री सईद आमीर हैदर कमाल नकवी जो कि अमरोहा (उत्तर प्रदेश) में जन्में थे के नाम से इस स्टुडियो की रचना हुई. कमाल अमरोही प्रसिद्ध सिने अभिनेत्री मीना कुमारी के पति थे. फिल्म निर्देशन के साथ ही उन्होंने पटकथा लेखन और संवाद लेखन भी किया. स्टुडियो की स्थापना 1958 में जोगेश्वरी में की गयी जहाँ पर यह 15 एकड़ क्षेत्र में फैला है. स्टुडियो का नाम कमालिस्तान है. स्टुडियो में शूट की गयी प्रसिद्ध फिल्में हैं–'पाकीजा', 'महल', 'दायरा' एवं 'रजिया सुल्तान'.

फिल्म सिटी

यह एक स्टुडियो न होकर एक फिल्म नगरी के रूप में संजय गाँधी नेशनल पार्क, गोरेगाँव पूर्व में बना हुआ है. इस फिल्म सिटी में कई शूटिंग सैट्स, थिएटर, बड़े-बड़े मैदान, जंगल, गार्डन, तालाब आदि सब कुछ हैं. इसकी स्थापना महाराष्ट्र सरकार ने 1977 में की थी ताकि फिल्म निर्माण की सुविधाएं किफायती दर पर उपलब्ध कराई जा सकें. इसकी रूपरेखा वी शांताराम के मार्गदर्शन में तैयार की गयी थीं. आजकल प्रसारित होने वाले अधिकांश प्राइम टाइम धारावाहिक यहाँ पर तैयार किये जाते हैं. भारत के पहले फिल्म निर्माता, निर्देशक एवं पटकथा लेखक स्व. दादा साहब फाल्के की याद में 2001 में इसे दादा साहब फाल्के नगर का नाम दिया गया. इस स्टुडियो को देखने के लिए महाराष्ट्र पर्यटन विभाग द्वारा उपलब्ध करवाई गयी बस द्वारा मात्र 600 रुपये के टिकट में फिल्म सिटी की सैर की जा सकती है.

रामोजी राव फिल्म सिटी, हैदराबाद

यह भी फिल्म सिटी की तर्ज पर बनाया गया एक अत्याधुनिक स्टुडियो है जिसका नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में विश्व के सबसे बड़े एकीकृत स्टुडियो के रूप में दर्ज है. इस स्टुडियो का विस्तार 1666 एकड़ क्षेत्र में है. यहाँ पर रेलवे स्टेशन से लेकर हवाई अड्डा सब कुछ है और वह भी वास्तविक स्वरूप में. यह इसका बड़ा पर्यटन आकर्षण है. इसमें 15 लाख पर्यटक प्रति वर्ष भ्रमण करते हैं. रामोजी राव द्वारा इसकी स्थापना की गयी है. शुरुआत से ही हमारे बैंक से इस फिल्म सिटी का व्यावसायिक संबंध है. दिल वाले, 'बाबी जासूस', 'बाहुबली' जैसी बहुत सी प्रसिद्ध फिल्में यहीं पर शूट की गयी हैं.

इस तरह से फिल्म निर्माण करने वाले स्टुडियो की कहानी बहुत रोचक एवं संघर्ष पूर्ण है. वास्तव में फिल्में स्वस्थ, सस्ता एवं सुलभ मनोरंजन प्रदान करती हैं. फिल्म निर्माण के केन्द्र, ये स्टुडियो लाखों लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं. ऐसे में इनके विषय में जानना रोचक है. हमारे फिल्म जगत ने विश्व पटल पर अपना रुतबा कायम कर लिया है. व्यवसायिक दृष्टिकोण से फिल्म निर्माण के क्षेत्र में लाभ का सौदा है. स्टुडियो निर्माण किसी एक कलाकार की कला को ही नहीं निखारता, बल्कि इसके होने से हजारों नयी प्रतिभाओं को समाज के सामने आने का अवसर मिलता है. देश में फिल्मों के निर्माण को और अधिक सुगम एवं कारोबारी दृष्टिकोण प्रदान करने की आवश्यकता है.

मोहन बोधनकर
स्टा.प्र.कें., भोपाल

संदकफू - हिमालय का खूबसूरत नजारा

कुदरत जब अपनी खूबसूरती बिखेरती है तो सीमाएं नहीं देखती. यही बात उन निगाहों के लिए भी कही जा सकती है, जो उस खूबसूरती का नजारा लेती हैं. हम यहां बात केवल देशों की सीमाओं की नहीं कर रहे, बल्कि धरती व आकाश की सीमाओं की भी कर रहे हैं. हिमालय ऐसी खूबसूरती से भरा पड़ा है. इस बार हम जिक्र कर रहे हैं संदकफू का जो पश्चिम बंगाल से सिक्किम तक फैली सिंगालिला शृंखलाओं की सबसे ऊंची चोटी है. संदकफू की ऊंचाई समुद्र तल से 3611 मीटर है.

यहां जाने का रोमांच जितना इतनी ऊंचाई पर जाने से है, वहीं इस बात से भी है कि यह वो जगह है जहां से आप दुनिया की पांच सबसे ऊंची चोटियों में से चार को एक साथ देख सकते हैं. ये हैं दुनिया की सबसे ऊंची चोटी माउंट एवरेस्ट (8848 मीटर), तीसरे नंबर की और भारत में सबसे ऊंची कंचनजंघा (8585 मीटर), चौथे नंबर की लाहोत्से (8516 मी) और पांचवे नंबर की मकालू (8463 मी). खास तौर पर कंचनजंघा व पंडिम चोटियों का नजारा तो बेहद आकर्षक होता है. यही हर साल देश-विदेश से रोमांच-प्रेमियों को यहां खींच लाता है. यही आकर्षण है कि खुले मौसम में सूरज की पहली लाल किरण इन बर्फीली चोटियों पर पड़ते देखने के लिए सवेरे चार बजे से सैलानी हड्डियों को जमाने वाली ठंड में भी मुस्तैद नजर आते हैं. कुछ-कुछ ऐसा ही आकर्षण मनयभंजन से संदकफू पहुंचने के रास्ते का भी है.

पूरा रास्ता ठीक भारत-नेपाल सीमा के साथ-साथ है, या यूं कहे कि ये रास्ता ही सीमा है. आपके पांव कब नेपाल में हैं और कब भारत में, यह आपको पता नहीं नहीं चलेगा. दिन में चलेंगे तो भारत में, रात में रुकेंगे तो नेपाल में.

थोड़ी-थोड़ी दूर पर लगे पत्थरों के अलावा न सीमा के कोई निशान हैं और न कोई पहरुए. काश, सारी सीमाएं ऐसी हो जाएं. इस रास्ते की हर बात में कुछ खास है-चाहे वो संदकफू तक ले जाने वाली लैंडरोवर हो जो देखने में किसी संग्रहालय से आई लगती है, या यहां के सीधे-सादे मेहमानवाज लोग हों जो ज्यादातर नेपाल से हैं लेकिन आर्थिक-सामाजिक तौर पर भारत से भी गहरे जुड़े हैं, या फिर यहां की संस्कृति हो जो बौद्ध धर्म की अनुयायी है. पूरे इलाके में फैले गोम्पा व मठ इसके गवाह है

खास बात यहां के बादलों में है जो पूरे रास्ते आपक साथ आंख-मिचौनी खेलते रहते हैं. इस कदर कि इन मेघों के चलत गांवों के नाम मेघमा पड़ जाते हैं. खास बात इस बात में है कि मनयभंजन से निकलकर चिले, तुंबलिंग (टोंगलू), कालापोखरी, संदकफू, फालुत, गुरदुम व रिम्बिक तक हर जगह पर आपको शेरपाओं के लॉज मिल जाएंगे जहां आपको बेहद किफायती दामों पर (दाम तय करवाना आपके गाइड पर भी निर्भर करता है) ठहरने की साफ-सुथरी, गरम जगह और घर जैसा खाना मिल जाएगा.

खास चीज तुम्बा भी है जो सीधे लफ्जों में कहा जाए तो इस इलाके की देसी बीयर है. इसे बनाने और पीने, दोनों का तरीका इतना अनूठा है कि आप इसका स्वाद लेने से खुद को रोक नहीं पाएंगे. खान-पान की बात करें तो खास चीज यहां की चाय है जो पहाड़ों पर तमाम बागानों में उगाई जाती है और वह सुखाया गया पनीर भी जो याक के दुध से बनाया जाता है. यहां जाएं

तो थुप्पा व मोमो का स्वाद भी लेना न भूलें क्योंकि वह स्वाद आपको अपने शहर में नहीं मिलेगा. मनयभंजन से संदकफू 31 किलोमीटर का रास्ता बेहद खूबसूरत है. रास्ते की खूबसूरती प्राकृतिक तो है ही, उसे तय करने के तरीके में भी है.

मनयभंजन से संदकफू होते हुए फालुत तक का रास्ता सड़कनुमा है. लेकिन यह सीधी-सादी सड़क नहीं बल्कि ज्यादातर जगहों पर खड़ी चढ़ाई वाली और पूरे रास्ते पथरीली है. माना जा सकता है कि सड़क है तो कोई वाहन भी चलता होगा. सही है, और यह वाहन भी संदकफू जाने के अनुभवों में से सबसे खास है. यह वाहन यानी जीप है-लैंडरोवर. पचास साल से भी पुराना ब्रिटिश मॉडल. इसे इस रास्ते पर चलते देखना हैरतअंगेज है तो इस पर बैठकर सफर करना साहस का काम. इस लिए जो शारीरिक रूप से सक्षम हैं, वे केवल एक दिन या कुछ दूरी का सफर इस लैंडरोवर में करते हैं ताकि इसका अनुभव ले सकें. इस रास्ते पर ट्रैकिंग ज्यादा कष्टदायक नहीं क्योंकि फालुत तक का सफर लैंडरोवर के रास्ते पर ही होता है. लेकिन वापसी का सफर जंगल के रास्ते होता है. संदकफू या फालुत से वापसी करने वाले जंगल के रास्ते रिम्बिक तक उतरते हैं.

कैसे पहुंचें

संदकफू जाने का असली सफर मनयभंजन से शुरू होता है. मनयभंजन जाने के दो सड़क मार्ग हैं-पहला सीधा जलपाईगुड़ी से जो मिरिक होते हुए जाता है. इस रास्ते पर न्यूजलपाईगुड़ी से मनयभंजन की दूरी नब्बे किलोमीटर है. लेकिन, चूंकि इस रास्ते पर आने-जाने के साधन बहुत सीमित हैं, इसलिए लोग दूसरे रास्ते का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं जो घूम होते हुए है. न्यूजलपाईगुड़ी से दार्जिलिंग के रास्ते पर घूम शहर दार्जिलिंग से नौ किलोमीटर पहले है. इस रास्ते पर छोटी लाइन की ट्रेन सड़क के साथ-साथ चलती है, इसलिए सड़क व ट्रेन, दोनों से घूम पहुंचा जा सकता है. घूम से मनयभंजन का सफर लगभग एक घंटे का है. इन रास्तों पर बसें कम ही मिलेंगी. आने-जाने का ज्यादा सुलभ व किफायती साधन जीप हैं.

न्यूजलपाईगुड़ी या दार्जिलिंग से पूरी जीप भी बुक कराई जा सकती है या फिर प्रति सवारी सीट भी इस रास्ते की जीपों में आप ले सकते हैं. न्यूजलपाईगुड़ी रेल मार्ग से दिल्ली, हावड़ा व गुवाहाटी से सीधा जुड़ा है. सबसे निकटवर्ती हवाईअड्डा सिलीगुड़ी के पास बागडोगरा है.

खास बातें

संदकफू सिंगालिला राष्ट्रीय पार्क के दायरे में है. बारिश के तीन महीनों में यानि 15 जून से 15 सितंबर तक यह पार्क सैलानियों के लिए बंद रहता है. यानि अब अगले महीने पार्क खुलने का समय आने वाला है. तैयारी कर लें. बारिश से पहले यानि मई-जून में जाने वालों को रास्ते में गरमी का अहसास हो सकता है. लेकिन सितंबर के बाद से मौसम में ठंडक बढ़ती जाएगी. संदकफू में ऊंचाई की वजह से मौसम हमेशा ठंडा मिलेगा. सर्दियों में यहां खासी बर्फ भी गिरती है. वैसे भी पहाड़ों पर मौसम पलभर में बदलता है. एक पल में धूप में आपको गरमी लगेगी तो दूसरे ही पल बादल छाते ही आप ठिठुरने लगेंगे. इसलिए अपने साथ कपड़ों का पूरा इंतजाम रखें. रास्ते में अपने साथ एक गाइड जरूर रखें. यह न केवल रास्ता दिखाने व रुकने की जगह बताने के लिए बल्कि राष्ट्रीय पार्क होने की वजह से भी नियमानुसार जरूरी है. मनयभंजन से ये गाइड मिल जाएंगे. इनकी दरें भी तय हैं-250 से तीन सौ रुपये प्रति दिन. सामान ज्यादा हो तो पोर्टर भी करना होगा. थोड़ा सामान तो गाइड भी अपने साथ उसी फीस में उठा लेता है. स्थानीय गाइड तमाम अनजान मुश्किलों में भी मददगार रहते हैं.

सुनील कुमार
एन आर आई शाखा, मुंबई.

सेंटर स्प्रेड

THE
WORLD'S
LARGEST
FILM CITY
RAMOJI
ETHEREAL BEAUTY @
BUTTERFLY GARDEN
MYTHOLOGICAL GRANDEUR

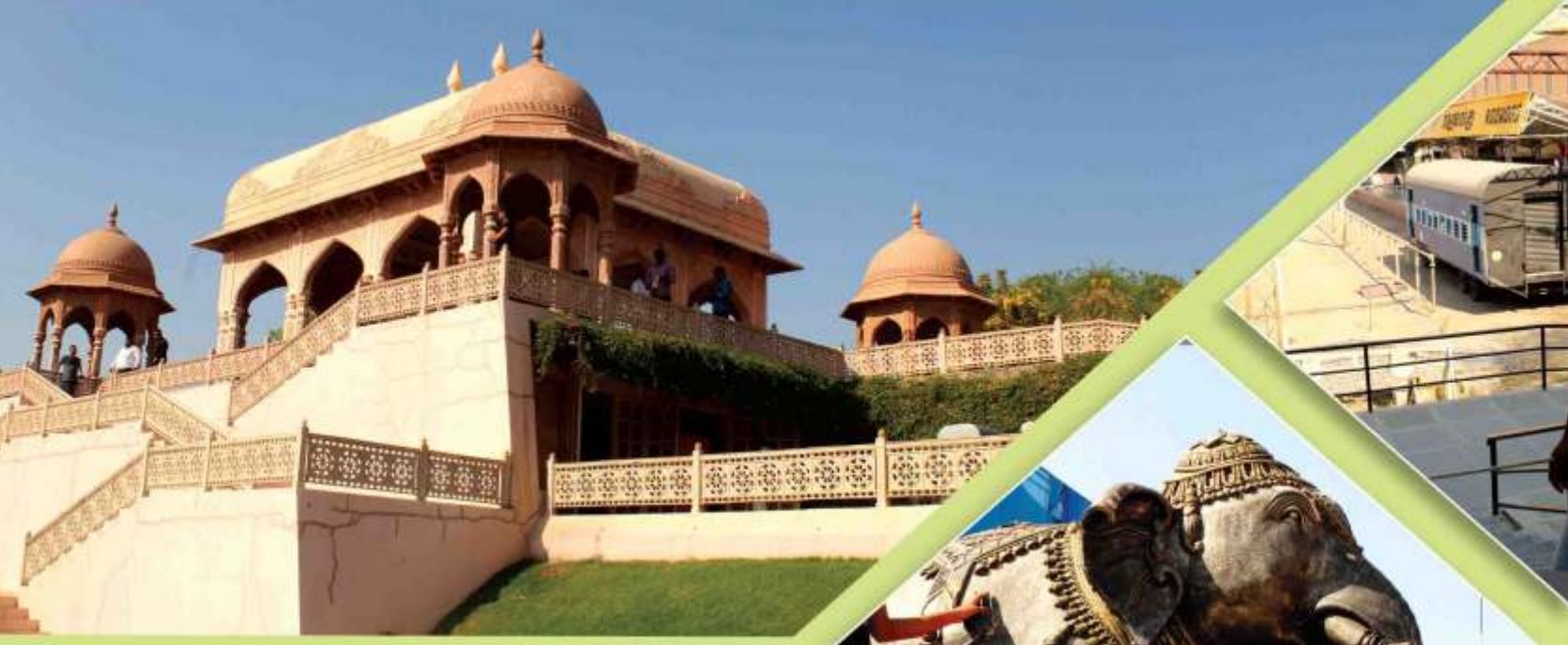

रामोजी फिल्म सिटी

रामोजी फिल्म सिटी विश्व का सबसे बड़ा फिल्म स्टूडियो है और यह गिनिज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्डस में भी दर्ज है. इसकी शुरुआत 1996 में हुई थी. दक्षिण भारत के मशहूर फिल्म निर्माता श्री रामोजी राव ने इसकी स्थापना की थी. यह हैदराबाद से लगभग 25 किलो मीटर नलगोंडा मार्ग पर स्थित है. यह स्टूडियो 2000 एकड़ से भी अधिक क्षेत्रफल में फैला हुआ है. रामोजी फिल्म सिटी एक प्रसिद्ध पर्यटन केंद्र भी है. यहाँ फिल्मों के अलावा सिरियलों की शूटिंग तो होती ही है, साथ ही यह पिकनिक मनाने, पार्टी, कॉर्पोरेट इवेंट, कॉन्फ्रेंस आदि के लिए भी यह एक आदर्श स्थान है.

यहाँ घर, लॉन्ज, बड़े-बड़े पेड़, बाग, महल, पुतले आदि विभिन्न बातों/ स्थानों को तैयार किया गया है. दक्षिण भारतीय फिल्मों के अलावा, हिन्दी तथा अन्य भाषायी फिल्मों की शूटिंग भी यहाँ की जाती है. अपनी सुंदरता और विस्तृत परिवेश को लेकर रामोजी राव फिल्म सिटी, विश्व में मशहूर है.

प्रिया सेठ
क्षे.का., हैदराबाद

समाज के साथ फिल्में और फिल्मों के साथ समाज

फिल्में मानव जगत की एक अद्भुत उपलब्धि हैं. फिल्मों का आविष्कार मानव जगत में एक क्रांति है, यह मानव समाज के विभिन्न पहलुओं का सजीव चित्रांकन है जिसे देखकर मनुष्यों को अद्भुत सुख का अनुभव होता है.

इतना प्रचार-प्रसार शायद ही किसी अन्य वैज्ञानिक आविष्कार का हुआ हो जितनी लोकप्रियता सिनेमा जगत की हुई है. स्त्री-पुरुष, अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित आदि लगभग सभी वर्गों पर सिनेमा का प्रभाव पड़ा है, सभी वर्गों के लोग सिनेमा की लय में झूमते-गाते दिखाई देते हैं.

सिनेमा के सौ वर्ष कब पूरे हुए, कुछ पता ही नहीं चला. सुनहरे पंखों को लगाकर सिनेमा उड़ता रहा और देखते ही देखते भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा बन गया. इन सौ सालों में भारतीय सिनेमा ने भारतीय समाज पर गहरे प्रभाव भी छोड़े हैं. सच तो यह है कि भारतीय सिनेमा को परे रखकर हम भारतीय समाज का यथेष्ट मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं. अपने इस सफर में भारतीय सिनेमा ने फर्श से अर्श तक का सफर सधे कदमों से पूरा किया है. हमने मूक फिल्मों से अगला कदम बोलती फिल्मों की तरफ बढ़ाया. फिल्म निर्माण में कोलकाता स्थित मदन टॉकीज के बैनर तले ए ईरानी ने महत्वपूर्ण पहल करते हुए पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' बनाई. इसके बाद सिनेमा को नई गति प्रदान हो गई. हम तकनीकी और प्रौद्योगिकी स्तर पर कहीं ज्यादा सशक्त हुए और अंतर्राष्ट्रीय सिनेमा में अपनी दखल को बढ़ाया.

इस सफर में भारतीय सिनेमा ने भारतीय समाज को कई प्रकार से प्रभावित किया. अगर यह कहा जाए कि इन सौ वर्षों में भारतीय सिनेमा ने खुद को भारतीय समाज का दर्पण सिद्ध किया है तो गलत नहीं होगा. यथार्थ सिनेमा और समानान्तर सिनेमा ने फैंटासी से अलग हटकर जमीनी हकीकतों को पर्दे पर जगह दी और सिनेमा को उद्देश्यपूर्ण संस्पर्श दिए. हमने उद्देश्यपूर्ण सिनेमा की बुनियाद डाली और समाज को न सिर्फ सशक्त संदेश दिए, बल्कि दिशा बोध भी कराया. व्यवस्था पर कटाक्ष भी किए और समाज के यथार्थ को भी सशक्त अभिव्यक्ति दी. इस तरह भारतीय सिनेमा ने भारतीय समाज के बीच जहां मजबूत पैठ बनाई है, वहीं समाज को रचनात्मक आयाम दिया. उसके नवनिर्माण में अपने अवदान को सुनिश्चित किया.

समाज से सिनेमा का हमेशा गहरा जुड़ाव रहा. इस संदर्भ में समाज को यथार्थ, उसकी समस्याओं व विभीषिकाओं को रेखांकित करने वाली फिल्मों

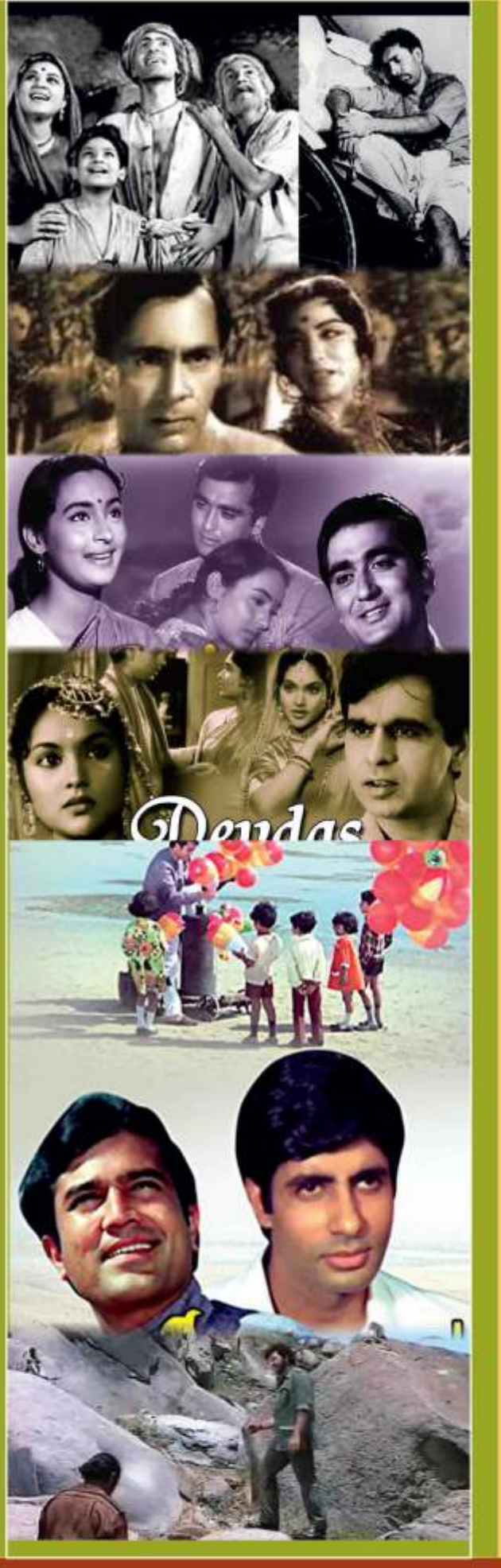

का जिक्र आवश्यक है. विमल राय ने दो बीघा जमीन के माध्यम से देश के किसानों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया. इस फिल्म में बलराज साहनी का यह संवाद – 'जमीन चले जाने पर किसानों का सत्यानाश हो जाता है'. आज भी भूमि अधिग्रहण की मार झेल रहे भारतीय किसानों की पीड़ा को सटीक ढंग से अभिव्यक्त करता है. यह पहली भारतीय फिल्म थी, जिसने कॉन फिल्म समारोह में पुरस्कार प्राप्त किया था. 'देवदास', 'बंदिनी', 'सुजाता' और 'परख' जैसी फिल्मों को जहां युग प्रवर्तक माना जाता है, वहीं महबूब खान की फिल्म 'मदर इंडिया', शंभु मित्रा की 'जागते रहो' तथा सत्यजीत रे की फिल्म 'पाथेर पांचाली' भारतीय सिनेमा के लिए मील का पत्थर साबित हुई.

भारतीय हिन्दी सिनेमा के इतिहास में 'आनंद' फिल्म का डायलॉग ''बाबू मोशाय, हम सब तो रंगमंच की कठपुतलियां है जिसकी डोर ऊपर वाले के हाथ में है, कौन, कब, कहां, उठेगा, कोई नहीं जानता.'' को कौन भूल सकता है? इस फिल्म में अपनी जिंदगी के आखिरी पलों में मुंबई आने वाले आनंद सहगल(राजेश खन्ना) की मुलाकात डाक्टर भास्कर बैनर्जी (अमिताभ बच्चन) से होती है. आनंद से मिलकर भास्कर जिंदगी के नए मायने सीखता है और आनंद की मौत के बाद अंत में कहने को मजबूर हो जाता है कि ''आनंद मरा नहीं, आनंद मरते नहीं.'' आनंद ने सिखाया कि मौत तो आनी है, लेकिन हम जीना नहीं छोड़ सकते. जिंदगी लंबी नहीं, बड़ी होनी चाहिए. जिंदगी जितनी जियो, दिल खोलकर जियो. हिन्दी सिनेमा का यह आनंद भले ही अब हमारे बीच न हो, लेकिन जिंदादिली की नई परिभाषा आनंद फिल्म ने गढ़ी. भारतीय सिनेमा में इस प्रकार की फिल्मों को नया आयाम देते हुये कई फिल्मों का निर्माण हुआ ''शोले'' भारत की सफलतम फिल्मों में से एक है. गली–गली फिल्म के संवाद गूँजे. पक्के दोस्तों को जय–वीरू कहा जाने लगा तो बक–बक करने वाली लड़कियों को बसन्ती और गब्बर के डर ने बच्चों को सुलाने में भारतीय माँ ओं की काफी मदद की. 38 वर्षों के बाद भी इस फिल्म को थ्री डी में परिवर्तित कर फिर रिलीज किया गया था. भारतीय जनमानस पर शोले फिल्म का गहरा असर हुआ.

सिनेमाई फिल्मों के कथानक का सीधा संबंध मानवीय संवेदनाओं, अनुभूतियों आदि से होता है. अतः यह मनुष्य के मन–मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालती है. इस परिस्थिति में इसके दुरुपयोग की संभावना भी काफी बढ़ गई है. आजकल निर्मातागण धन–प्राप्ति की लालसा में अभद्र व अश्लील फिल्मों का चित्रांकन कर रहें है, जिसका दुष्प्रभाव बच्चों व नवयुवकों पर स्पष्ट देखा जा सकता है. आज के नवयुवकों के चारित्रिक पतन के लिए चलचित्र प्रमुख रूप से उत्तरदायी है.

फिल्मों में प्रयुक्त अश्लील गानों को देखकर युवा पीढ़ी उसी का अनुसरण करने लगती है जो धीरे–धीरे उन्हें पतन की तरफ उन्मुख करती है.

फिल्मों में प्रदर्शित विचारों, भावनाओं को मनुष्य स्वयं से जोड़ता है और जीवन में उसका अनुसरण करना चाहता है. कभी–कभी यह अनुसरण जीवन बदल देता है. यदि फिल्मों में प्रदर्शित भावना सुधार की तरफ हो. कभी–कभी यह अवनति की ओर भी ले जा सकती है. पिछले दशक में बहुतायत फिल्मों ने अच्छा व्यापार किया. कुछ फिल्मों का मूल उद्देश्य सिर्फ व्यापार की तरफ ही रहा, हालांकि कुछ फिल्मों ने मानव समाज के मस्तिष्क पटल पर अच्छी छाप छोड़ी है. आधुनिक युग में मनुष्य पुस्तकों, समाचार पत्रों से अधिक टेलीविज़न तथा मोबाइल पर अधिक केन्द्रित है. वैज्ञानिक रूप से देखा जाए तो चलचित्रों द्वारा देखी, समझी गई चीजें हमारे मन–मस्तिष्क पर लंबे समय तक निहित रहती हैं.

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं – एक सम पक्ष दूसरा विषम पक्ष! भारतीय सिनेमा का स्वरूप भले ही व्यावसायिक रहा, किन्तु इसमें एक पेशागत ईमानदारी बनी रही . पिछले कुछ समय से बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण इस पेशागत ईमानदारी का ह्रास होता जा रहा है और यह विधा आलोचनाओं का शिकार भी हुई है. फिल्मों को बिकाऊ बनाने के चक्कर में जहां मसाला फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ, वहीं सशक्त कथानक तो मानो विलुप्त ही हो गए. भला समाज को नशा, हेट स्टोरी, रागिनी एमएमएस, सेक्स प्रधान फिल्मों में क्या मिल सकता है सिवाय मानसिक असंतुलन और गंदी सोच के? शास्त्रीय शैली की नृत्यांगनाओं का स्थान 'आइटम गर्ल' ने ले लिया है. जो सिने संगीत अपने सुनहरे, सुरीले सफर के लिए जाना जाता था अब उसका स्वरूप वैसा नहीं रहा.

भारतीय सिनेमा के पिछले कितने ही वर्ष निःसन्देह शानदार रहे मगर इस नए दौर में इसमें भटकाव जरूर आया है. जिसे दूर कर हम आगे के सफर को और खुशनुमा बना सकते हैं और समाज के प्रति सिनेमा, फिल्मों की सार्थकता को भी साबित कर सकते हैं. फिल्मों का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन ही नहीं अपितु उद्देश्यपूर्ण स्तरीय मनोरंजन होना चाहिए. साथ ही समाज परिवर्तन और समाज की सोच बदलने के लिए भी फिल्मों का निर्माण किया जाना चाहिए. पूर्व में, सिनेमा मनोरंजन के अलावा इसी उद्देश्य के साथ बनाया जाता था. लेकिन आज यह उद्देश्य परिवर्तित होता हुआ दिखाया देता है. सपनों और यथार्थ के बीच बेहतर समन्वय स्थापित कर इस सफर को सलीके से आगे बढ़ाकर हम समाज के प्रति अपने दायित्वों का भी निर्वहन कर सकते हैं.

वैभव मिश्रा
क्षे.का., जबलपुर

साहित्य और फिल्में

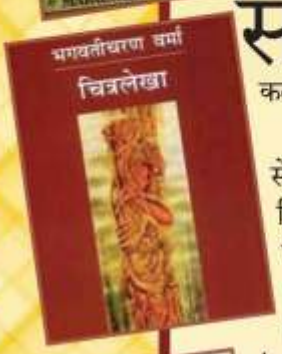

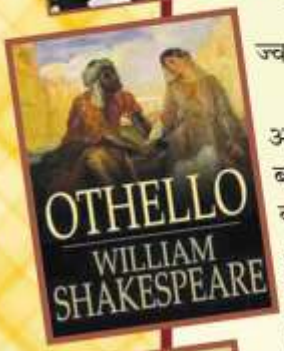

साहित्य और सिनेमा दोनों अभिव्यक्ति के ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा लोगों (पाठक/दर्शक) की कल्पनाओं में छवियों और संभावनाओं का निर्माण होता है.

साहित्य छवि निर्माण का यह काम शब्दों के माध्यम से करता है. किसी कलमकार के शब्दों का प्रभाव विभिन्न पाठकों की कल्पनाओं में उनकी समझ, उम्र, शिक्षा, परिस्थिति और अनुभवों के आधार पर यह अलग- अलग हो सकता है पर सिनेमा में सब कुछ निर्देशक की सोच और कल्पनाशीलता के दायरे में बंधा होता है. एक दर्शक को कैमरे की आँख वही सब कुछ दिखाती है, जो निर्देशक उसे कहता है. कई बार निर्देशक और उसके टीम की सोच व कल्पनाशीलता की मौलिकता के चलते बनी फिल्म मूल साहित्य से अधिक प्रभावशाली हो उठती है. हम इसे उस फिल्म के जरिये साहित्य के मौलिक सृजन के रूप में देख सकते हैं. जे के राउलिंग द्वारा लिखित साहित्य पर उसी नाम से बनी 'हैरी पॉटर' फिल्म शृंखला की फिल्में या मिशेल क्रिस्टोन की रचना पर बनी 'ज्युरासिक पार्क' इसका ज्वलंत उदाहरण हैं.

सिनेमा निर्माण के लिए एक सशक्त, ठोस और अपीलिंग कथानक की जरूरत होती है, जिसे आधार बना उस फिल्म की पटकथा लिखी जाती है और ऐसे कथानक की तलाश में सिनेमा ने अपने आरंभ से लेकर अब तक साहित्य के दरवाजे पर बार- बार दस्तक दी है. न केवल वहाँ से कथानक ले उसका उपयोग किया है, वरन उसका रूपान्तरण भी किया है और उसमें मिलावट की कोशिश भी की है. न केवल भारतीय भाषाओं में, वरन विश्व की अन्य भाषाओं में बनी फिल्में इसका उदाहरण हैं.

मोटे तौर पर यह माना जा सकता है कि साहित्य सृजन नितांत व्यक्तिगत कर्म है, जबकि सिनेमा टीम वर्क. इस रूप में साहित्य लेखन के विपरीत फिल्म बनाना एक तरह की लोक विधा है. किन्तु अभिव्यक्ति की पृथक विधाएँ होने के बाद भी दोनों का पारस्परिक संबंध बहुत गहरा है. साहित्य और सिनेमा दोनों में प्रस्तुतिकरण का तरीका, जिसे हम शैली कहते हैं, महत्वपूर्ण होता है. एक लेखक शब्दों के माध्यम से अपने पाठक से तादात्म्य स्थापित करता है और इसीलिए साहित्य में शब्दों के जरिये कहानी कहने का तरीका प्रभावशाली होता है. जबकि सिनेमा में कहने से अधिक उसे प्रस्तुत करने का तरीका महत्वपूर्ण होता है.

अपने शुरुआत के दिनों में जहाँ हॉलीवुड में माग्रेट मिशेल के 1936 में लिखित उपन्यास पर उसी नाम से 'गॉन विथ द विंड' (1939) और शेक्सपियर के उपन्यास पर आधारित 'हेमलेट' (1948) जैसी फिल्में बन रही थीं, हिन्दी और अन्य भारतीय भाषी फिल्में रामायण और महाभारत जैसी साहित्यिक कृतियों में वर्णित घटनाओं और पात्रों पर आधारित रहीं. सदियों से इन रचनाओं का भारतीय समाज पर बड़ा गहरा प्रभाव रहा है. बाद के दिनों तक भी मणिरत्नम जैसे दिग्गज निर्देशक तमिल में 'थालापथी' (1991) जैसी फिल्में बनाते रहे जो दु:शासन और कर्ण पर आधारित थी. हालाँकि उस समय भगवती चरण वर्मा के उपन्यास पर 'चित्रलेखा' (1941) जैसी फिल्म भी बनी, पर उस दौरान धार्मिक फिल्मों के अलावा आजादी के आंदोलन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के काल की आदर्श, त्याग और देशभक्ति परक रचनाओं पर फ़िल्मकारों ने हाथ आजमाया. बंकिमचन्द्र द्वारा लिखित उपन्यास 'आनंदमठ' पर बनी फिल्म 'आनंदमठ' और साने गुरुजी की आत्मकथा पर आधारित मराठी फिल्म 'श्यामची आई' (1953) इसका उदाहरण है.

हिन्दी फिल्मों के आरंभ होने से लेकर अब तक शेक्सपियर, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, शरतचंद्र, प्रेमचंद, भगवती चरण वर्मा, विमल मित्र, फणीश्वर नाथ रेणु एवं ओ हेनरी से लेकर गुलशन नन्दा, रस्किन बॉन्ड, झुंपा लाहिड़ी और चेतन भगत तक तथा इन जैसे अन्य अनेक साहित्यकारों की साहित्यिक कृतियों की ओर फ़िल्मकारों ने बार- बार देखा है, उनसे प्रेरणा ग्रहण किया है. अन्य भारतीय व पश्चिमी भाषाओं में बनी फिल्में भी इनका अपवाद नहीं थीं.

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'काबुलीवाला' पर इसी नाम की फिल्में 1957 तथा 1961 में बनी. न केवल हिन्दी में वरन बांग्ला में भी इसी नाम से फिल्म बनाई गई. बांग्ला सृजनात्मकता और बौद्धिकता के पर्याय गुरुदेव की अन्य अनेक कृतियों यथा 'चोखेर बाली', 'नौका डूबी', 'चार अध्याय', 'शेषेर कविता', 'समाप्ति' आदि के आधार पर 'चोखेर बाली' (2003), 'उपहार' (1971), 'चार अध्याय' (1997), 'नौका डूबी' (2011), 'मिलन' (1944) आदि फिल्में बनाई गईं.

कथाशिल्पी शरतचन्द्र ने न केवल बांग्ला और हिन्दी के, वरन अन्य भाषायी फ़िल्मकारों का भी शायद सबसे अधिक ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है. नाटकीयता, घनीभूत संवेदना, आदर्शवादी प्रेम और समर्पण के तत्वों के कारण उनकी रचनाओं ने अपने समय से परे जाकर मानव हृदय में अपना स्थान बनाया है. हिन्दी में 'देवदास' के इसी नाम से 1936, 1955 और 2002 में फिल्में बनाई गईं. उनकी ही अन्य कृतियों को आधार बनाकर बालीवुड में 'परिणीता' (1953, 2005), 'स्वामी', 'खुशबू', 'श्रीकांत', 'अपने- पराये' जैसी फिल्मे बनीं तो तेलुगु में 'वागदानम' (कृति - दत्ता) और 'मनदेसम' (कृति- विप्रदास) बनाई गईं.

पाश्चात्य के ख्यातनाम लेखकों से भी पूर्वी व पश्चिमी फिल्मी जगत काफी प्रभावित रहा है. सार्वकालिक महान साहित्यकार शेक्सपियर के उपन्यास दुनिया भर के फ़िल्मकारों को अब तक लुभाते आ रहे हैं. उदाहरण के तौर पर 'ओमकारा' (ओथेलो), 'हैदर' (हेमलेट) और 'मकबूल' (मेकबेथ) जैसी फिल्मों में उनसे ही कथानक उठा कर उनका भारतीय परिवेश में रूपान्तरण किया गया. जेन आस्टेन

के उपन्यास 'एमा' पर 'आयशा' बनाई गई. पिछले कुछ वर्षों में चेतन भगत के उपन्यासों पर आधारित 'थ्री इडियट्स', 'हैलो', और 'काई पो छे' जैसी फिल्में समय के साथ आज के सिनेमाकारों की रुचि में आए परिवर्तन को दिखाती हैं.

किसी साहित्यिक कृति का फिल्मांकन यदि उस कृति की संवेदना और मानवीय भावों को दर्शकों तक पहुँचा पाने में समर्थ होता है, तो वह फिल्म सफलता के परचम लहराती है. हर एक सिनेमा प्रेमी इस बात से सहमत होगा कि सत्यजित राय की 'पथेर पाचाली' और 'अपूर संसार' जैसी बांग्ला और मारिओ पुजो के उपन्यास पर बनी 'दी गॉडफादर' जैसी आल टाइम क्लासिक हॉलीवुड फिल्में अपने दर्शकों को अनुभव व मानवीय संवेदना के एक अनोखे संसार में ले जाती हैं. यह तभी संभव है जब फ़िल्मकार व उसकी टीम खुद को साहित्यकार के मानसिक स्तर तक ले जा पाने में समर्थ होती है.

यह एक स्थापित तथ्य है कि किसी कृति के सिनेमा में रूपांतरण को स्वतंत्र कला के तौर पर काम करना चाहिए. भले ही यह मौलिक साहित्य के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करे, पर दूर से ही. आर के नारायण लिखित उपन्यास 'गाइड' पर बनी फिल्म आल टाइम क्लासिक 'गाइड' इसी तरह की फिल्म है. कहा जाता है कि आर के नारायण अपने उपन्यास पर बनी इस फिल्म के फिल्मांकन से खुश नहीं थे क्योंकि वह उसका हूबहू पुनर्लेखन नहीं था. मिलिंद बोकिल द्वारा मराठी में लिखित 'शाला' का इसी नाम से फिल्मांकन तथा मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है', बासु चटर्जी द्वारा बनाई गई फिल्म 'रजनीगंधा' इसी अच्छे रूपान्तरण की कला का प्रमाण है.

परंतु यह भी सत्य है कि छवि निर्माण करते समय निर्देशक की सोच निर्माता की सोच से प्रभावित होती है. ऐसा इस कारण है क्योंकि जहाँ साहित्य सृजन करते समय लेखक के ऊपर बाजार की कोई भूमिका नहीं होती, उसका दबाव नहीं होता. वहीं सिनेमा निर्माण में बाजार के तत्व न केवल प्रभावी होते हैं, वरन हावी भी होते हैं. फिल्म बनाने में बड़ी पूँजी लगती है और इसलिए भी फ़िल्मकार किसी साहित्यिक कृति का सिनेमाई पुनर्लेखन करते समय उसका रूपांतरण करता है, उसमें मिलावट करता है.

सामान्यत: यह माना जाता है कि हिन्दी के मुक़ाबले बंगाली फ़िल्मकारों ने साहित्यिक कृतियों को फिल्माने में लेखक की संवेदना, बाजार के तकाजों व फिल्म निर्माण में जबरदस्त तालमेल बनाया है. यहाँ बंगाली फ़िल्मकारों से तात्पर्य बांग्ला सिनेमा के सत्यजित राय, ऋत्विक घटक, मृणाल सेन या अपर्णा सेन जैसे निर्देशकों मात्र से नहीं वरन हिन्दी सिनेमा में सक्रिय बंगाली फ़िल्मकारों विमल राय, बासु चटर्जी और ऋषिकेश मुखर्जी से भी है.

जिसे हम भारतीय फिल्मों का गोल्डन पीरियड कहते हैं, उस काल में बनी हिन्दी फिल्मों पर अमृता प्रीतम जैसी साहित्यकार से लेकर गुलशन नन्दा तक के लेखन का प्रभाव भी रहा. 'कटी पतंग', 'खिलौना', 'नीलकमल', 'पत्थर के सनम' और 'शर्मीली' जैसी सुपर हिट फिल्मों की कथावस्तु गुलशन नन्दा के उपन्यासों से ली गई है, हालांकि हिन्दी के साहित्य जगत में उन्हें बहुत ज्यादा स्वीकार्यता नहीं मिली थी. इसी दौर में गुलजार ने बतौर निर्देशक कमलेश्वर की रचना पर 'आँधी', शेक्सपियर की एक कहानी पर 'अंगूर', उपन्यास 'दी जुडास ट्री' पर आधारित 'मौसम', राजकुमार मित्रा के बांग्ला उपन्यास पर आधारित 'परिचय' तथा शरतचन्द्र की रचना पर 'खुशबू' जैसी यादगार फिल्मों का निर्माण किया.

एक प्रसिद्ध भारतीय फिल्म समालोचक के अनुसार- जब हम सिनेमा और साहित्य के बारे में बात करते हैं, तब हमें इस तथ्य पर भी विचार करना चाहिये कि क्या वजह है कि दुनिया की सर्वश्रेष्ठ फिल्में पश्चिम से नहीं आ रही हैं, बल्कि छोटे देशों से आ रही हैं. उनके सामने महँगी और भव्य तकनीक की बाढ़ में बह जाने का खतरा है, लेकिन वे इसकी क्षतिपूर्ति महानतर सिनेमा के निर्माण से कर लेते हैं. यह खुशी, मनोरंजन और उत्थान की रचना के आस- पास पहुंचता है, जो काम साहित्य अब तक करता रहा है और आगे भी करता रहेगा.

जिन लोगों ने महान फिल्म निर्देशक ऋत्विक घटक की बांग्ला फिल्म 'मेघे ढाका तारा' देखी है, वे समालोचक महोदय की उक्त बात को अच्छी तरह से अनुभूति कर सकते हैं यह फिल्म शक्तिपद राजगुरु की रचना पर आधारित एक ऐसी फिल्म थी जो सिनेमा की सीमाओं के पार गई और इसने सार्वभौमिक को कुछ उसी तरह छूने का काम किया जैसा साहित्य करता है. इसी तरह की एक फिल्म गुरुदत्त निर्देशित 'साहिब, बीबी और गुलाम' थी जो विमल मित्र के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित थी और क्लासिक फिल्मों में शुमार होती है.

ऐसी ही एक फिल्म अर्जेंटीना की 'द सीक्रेट इन देयर आई' है. यह काफी परिपक्व और सब कुछ को समेटनेवाली फिल्म है. यह एक ऐसी फिल्म है जो अपने दायरे में मानवीय स्थिति की सभी भावनाओं को समेट लेती है. सुविधाजनक रास्ता अपनाते हुए इस फिल्म को गैर अंग्रेजी फिल्म की कैटेगिरी में बेस्ट फिल्म का ऑस्कर अवॉर्ड दे कर रुखसत कर दिया गया, जबकि यह फिल्म किसी भी तथाकथित अंग्रेजी फिल्म से श्रेष्ठ थी.

सिनेमा के इतिहास में कई फिल्में ऐसी भी बनी जो नामचीन साहित्यकारों की चर्चित रचनाओं पर आधारित होने के बावजूद असफल रही. इसके पीछे मुख्य कारण था, उस साहित्य के शब्दों और उसके संवेदनात्मक प्रभाव का रूपान्तरण प्रभावी ढंग से न कर पाना. किसी भी साहित्य का जब सिनेमाई पुनर्लेखन किया जाता है तो उसे अनुकरण मात्र की सीमा से परे जाना चाहिये. उदाहरण के तौर पर प्रेमचंद के उपन्यासों पर बनी फिल्में 'मिल मजदूर' (1035), 'सेवासदन' (1934) तथा 'रंगभूमि' (1946) असफल रहीं. किन्तु उन्हीं की रचना 'शतरंज के खिलाड़ी' पर सत्यजित राय द्वारा इस नाम से बनाई गई फिल्म सफल रही.

कलात्मक और रचनात्मक सुरुचिता के मामले में कल तक फिसड्डी रहे बॉलीवुड ने कई रूपांतरणों में अपना हाथ आजमाया है, लेकिन कई एक मामलों में सिर्फ मिलावट ही साबित हुए हैं. यहाँ 2014 में शेक्सपियर के 'हेमलेट' पर बनी फिल्म 'हैदर' को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है. यह दीवालियापन अचानक पुरानी फिल्मों के रीमेक के बढ़ते चलन में भी दिखाई देता है.

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि समय के साथ भले ही फिल्मों की तकनीक बदले, लोगों की पसंद बदले, फ़िल्मकारों का नजरिया बदले किन्तु शाश्वत मानवीय मूल्य फिर भी वही रहे और इसीलिए जब तक प्यार, खुशी, दर्द, सहानुभूति, क्रोध, भय और घृणा जैसे मूल भावनाओं से वशीभूत आदमी रोता- मुसकुराता रहेगा, फिल्में साहित्य का सहारा लेती रहेंगी. आज की तरह तब भी पंद्रहवीं सदी के शेक्सपियर और उन्नीसवी सदी के शरतचंद्र प्रासंगिक रहेंगे और तब भी 'गॉड फादर', 'पथेर पांचाली', 'प्यासा', 'साहिब, बीबी और गुलाम' तथा इन जैसी अनेक फिल्में जो सफलता पूर्वक साहित्य के प्रभाव का मुकाबला करती हैं, इसलिए वे हमेशा बची रहेंगी.

प्रतिभू बनर्जी
बड़नगर क्लस्टर
क्षे. का. इंदौर

भारतीय फिल्में ऑस्कर क्यों नहीं जीत पाईं

भारत की ताज़ा उम्मीद 'न्यूटन' ऑस्कर के दरवाजे से बेरंग लौट आई. भारतीय फिल्मों का ऑस्कर के लिए नामित होना, उम्मीद जगाना और खाली हाथ लौट आना एक दस्तूर बन गया है, जैसे 'लगान', 'मदर इंडिया', 'सलाम बॉम्बे', 'पहेली' जैसी फिल्में भी इस रिकॉर्ड को तोड़ नहीं पायी हैं. आइये जाने कुछ कारण कि आखिर क्यों दुनिया का सबसे बड़ा फिल्म निर्माण उद्योग बॉलीवुड, आज तक ऑस्कर क्यों नहीं जीत पाया है.

गलत फिल्मों का चयन : भारतीय ऑस्कर चयन समिति फिल्मों के चयन में लगातार एक मूलभूत त्रुटि करती आ रही है. यह त्रुटि है फिल्मों के चयन में बरती जाने वाली सावधानियों को अनदेखा करना. अन्यथा क्या वजह रही होगी कि गुरुदत्त, सत्यजीत रे, राज कपूर , ख्वाजा अहमद अब्बास, महबूब खान जैसे विलक्षण प्रतिभा के धनी, बुद्धिजीवी फ़िल्मकार होते हुए भी भारत का ऑस्कर रूपी वनवास का आज तक अंत नहीं हुआ है. गलत फिल्मों का चयन इसका सबसे बड़ा कारण है. भारत से चयनित फिल्म नितांत भारतीय होनी चाहिए– कहानी, आत्मा और अंदाज में. इसके विपरीत हमारे द्वारा चयनित फिल्म अक्सर अमरीकी सोच और सिनेमा का अनुसरण करती हुई प्रतीत होती है. एक ओर है 'न्यूटन' जो ईरानी वृत्तचित्र का भारतीय अनुसरण है और इसलिए मौलिकता के पैमाने पर औंधें मुंह आ गिरती है. परिणाम स्वरूप उसका ऑस्कर की दौड़ से बाहर होना लाज़मी है. दूसरी ओर है 'कोर्ट' जैसी भारतीय चयनित फिल्म जो अत्यंत धीमी है व अमरीकी फिल्मों में प्रचलित भावुकता के तड़के के साथ पेश की गई है.

प्रचार की कमी : भारत की ओर से चयनित फिल्म अक्सर प्रचार की कमी की वजह से ऑस्कर की दौड़ में पिछड़ जाती है. मदर इंडिया जैसी मार्मिक गाथा भी इसका शिकार हो चुकी है. ऑस्कर की पुरस्कार समिति को मदर इंडिया की नर्गिस का लाला के प्रति रुख मूर्खतापूर्ण लगा.यहाँ जरूरत थी कि समिति को भारतीय संस्कार और परिवेश से साक्षात्कार करवाने की ताकि वे समझ पाएँ कि क्यों पति के चले जाने पर भी उसकी ब्याहता सावित्री की तरह सिंदूर अक्षुण्य मानकर जीती है ! इसी तरह लगान शिकार हुई परिवेश की भिन्नता की. अमरीकी समिति जिसे क्रिकेट के प्रति भारतीय दीवानगी का अहसास ही नहीं है, वे लगान के भावनात्मक पहलुओं को समझ ही नहीं पर नतीजन लगान दौड़ से बाहर हो गई.

कहानी से ज्यादा एक्शन दृश्यों और गानो की भरमार : अमरीकी फिल्म उद्योग और बॉलीवुड में न सिर्फ सोच बल्कि फिल्म निर्माण की प्रक्रिया में भी जमीन – आसमान का अंतर है. अमरीकी चयनकर्ताओं के लिए चलती हुई फिल्म में अचानक ठूँसे हुए गाने देखना कौतुहल का विषय तो हो सकता है, पर वह फिल्म को जीत के पायदान तक नहीं पहुँचा सकता. बेसिर पैर के एक्शन दृश्य और अर्थहीन पटकथा आज भी भारतीय फिल्मों का अभिन्न अंग है. जो फिल्मों को सफलता से कोसों दूर रखती है.

क्षेत्रीय सिनेमा की अनदेखी : जब भी हम भारतीय सिनेमा की बात करते हैं तब हम दक्षिण फिल्म उद्योग और बंगाली सिनेमा को भूल जाते हैं. 'पथेर पांचाली', 'चारुलता', 'चोखर बाली', 'अदूर गोपालकृष्णन, 'कक्का', 'पुष्पक' इत्यादि कुछ अद्भुत रचनाएं हैं, जो हमारे क्षेत्रीय सिनेमा की देन हैं. भारत की ओर से चयनित फिल्म में क्षेत्रीय फिल्मों को भी स्थान मिलना चाहिए.

भारतीय फिल्म उद्योग जिसमें क्षेत्रीय सिनेमा भी शामिल हैं, साल दर साल कुछ नगीने निर्माण करता है. जरूरत है तो हमें सही का चयन कर उसे पुरजोर प्रचार और समर्पण के साथ ऑस्कर के लिए भेजने की तभी यकीनन ऑस्कर हमारा होगा. आखिर ऑस्कर पाने वाले ए. आर. रहमान भी भारतीय ही हैं.

अनमोल अग्रवाल
न्यू फतेहपुरा शाखा, उदयपुर

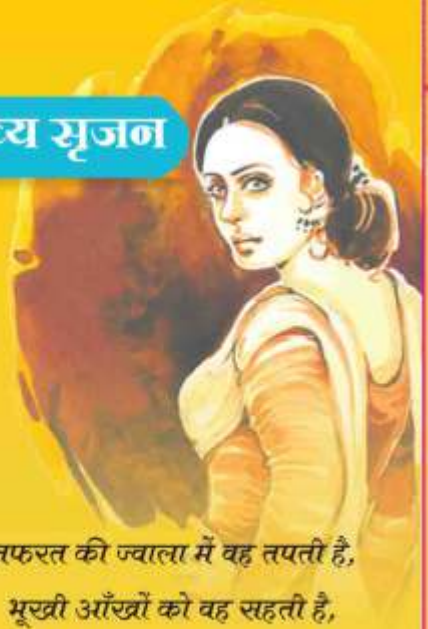

नफरत की ज्वाला में वह तपती है,
भूखी आँखों को वह सहती है,
उसके जीवन मे संघर्ष जारी है,
कोई और नहीं, वह एक नारी है.
वह नर से कम है ,
यह खोखले समाज से सुनती है,
यही आग उसके सीने मे सुलगती है,
क्या यह हमारे समाज की लाचारी है,
कोई और नहीं, वह एक नारी है.
वह दो परिवारों को संवारती है,
पढ़-लिख कर समाज को आईना दिखाती है,
ईश्वर की कृतियों में यह सबसे प्यारी है,
कोई और नहीं, वह एक नारी है.
नारी ममता, नारी पूजा
नारी एक क्लिष्ट रचना है,
नारी नर से कम है,
इसी सोच से तो बचना है,
वह अबला नहीं, अब एक चिंगारी है,
कोई और नहीं वह एक नारी है.

राधा रमन शर्मा
क्षे.का., कोल्हापुर.

चलते रहो चलते रहो...

नये मोड़ ज़िन्दगी के, सरल, नीरस रास्तों पे,
चलते-चलते जब कोफ़्त होने लगे.
तुम एक नया मोड़ ले कर देखना,
हो सकता है तुम्हें अच्छा लगे
यूं ही नहीं छोड़ देना, ज़रा देर में,
तुम शाम तक, रहना चलते,
दर्द की इन्तिहा में भी, सुकूँ है,
ज़रा देखो तो, ज़िन्दगी जी के.
क्षितिज के पास, वो जो झुरमुट है,
उस आड़ में, नन्हीं सी, कुटी तले,
तेरे दिल की भूली-बिसरी चाहत,
बिखरीं पड़ी हैं, जरा चल तो ले.
गर थम गया, बढ़ा न ज़रा भी,
जड़ता कहीं, तेरे पग थाम न ले।
समय के साथ, चलते रहना, अरु,
बदलते रहना ही शाश्वत सत्य है.

राहुल गुप्ता
भोपाल (मुख्य) शाखा

व्यथा

मज़दूर तोड़े पत्थर, पत्थर बिके बाज़ार
हाथ ने छाले कमाए, भूख करे व्यापार

भ्रष्टाचार के नक्कारखाने में, तूती सी ईमानदारी
करोड़ों के भाषण जुबानी, दो कौड़ी के आचार

सुंदर आवरण में, असत्य की प्रस्तुति
सत्य बेचारा पस्त है, झूठ की जय जयकार

मज़लूम औरतें घर से कमाने बाहर क्या निकलीं
वासना बनी खबरें, देह बनी अखबार

काली फीकी चाय में
सुखी रोटी डूबाते मंगलू ने देखा
सेठ के टॉइलेट को जाती चींटियों की क़तार

जिन हाथों ने अनाज उगाए,
दाने-दाने के मोहताज
विलासी, झूठे, पापी सारे ख़ज़ाने के पहरेदार

न मूल का ही पता है, न मर्म का है ज्ञान
सोशल मीडिया पे बन बैठे हैं
समाज के ठेकेदार

नश्वर है नश्वर, इसे अपना स्वर्ग न समझ
दुनिया के मकान में है हम सब किराएदार

शफ़ीक़ ख़ान
क्षे.का.,रायपुर

नेतृत्व विकास चलचित्र के माध्यम से...

कहा जाता है कि सिनेमा समाज का आईना होता है. समाज में जो कुछ भी घटित होता रहता है उसका प्रतिबिम्ब हमें सिनेमा में देखने को मिलता हैं. ये घटनाएं विश्व के किसी भी क्षेत्र की हो सकती है. भारत के परिप्रेक्ष्य में यह तथ्य वास्तविकता से जुड़ा है. हम किसी भी सिनेमा का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि उसकी कहानी काल्पनिक होते हुए भी उसके अधिकांश अंश किसी न किसी घटित हुई घटना के समरुप ही प्रतीत होते हैं.

भारत में आजादी से पूर्व ही सिनेमा प्रचलित था. जंगे आजादी के वीर सूरमाओं की गाथाओं को बेहद जोशीले तरीके से चलचित्रों में उतारा गया है. आजादी के बाद राष्ट्र निर्माण में सिनेमा की जिम्मेदारी और अधिक बढ़ गयी. चाहे वह हिन्दी सिनेमा रहा हो या फिर क्षेत्रीय, सभी अपने – अपने तरीके से राष्ट्र निर्माण में अपनी अग्रणी भूमिका का निर्वहन करने लगे और यहीं से वह दौर प्रारम्भ हुआ जहां से फिल्मों का प्रभाव समाज में दिखाई देने लगा.

भारतीय सिनेमा में सामाजिक घटनाओं का बखूबी चित्रण किया गया जिसमें आजादी की जंग एवं देश के बंटवारे से लेकर देश में होने वाले चुनावों की विभिन्न परिस्थितियों, नेताओं की चयन प्रक्रिया, चुनाव अभियान, मतदान प्रक्रिया आदि को विस्तृत रुप से प्रस्तुत किया गया. ऐतिहासिक क्षेत्र में सिने निर्माताओं के प्रिय चरित्र झांसी की रानी, वीर शिवाजी और महाराणा प्रताप रहे हैं, जिनकी बहादुरी का बखूबी चित्रण किया गया. वहीं दूसरी ओर फिल्मी नेताओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार की नेतृत्व शैली के परिदृश्यों को खूबसूरती के साथ सिनेमा के परदे पर उतारा गया. देश के प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे में नेतृत्व की भूमिका को फिल्मों के माध्यम से प्रदर्शित किया गया.

भारत में, सिनेमा इतना महत्वपूर्ण है कि प्रसिद्ध सितारों का स्टार–प्रशंसक के साथ एक अदृश्य संबंध बन जाता है और इन तत्वों के आधार पर इनका भारतीय व्यवस्था में रूपान्तरण करते समय, यह स्पष्ट हो जाता है कि फिल्म के सितारों की असाधारण स्थिति के कारण उनकी छवि स्वाभाविक रूप से किसी भी नेतृत्व में स्थानांतरित की जा सकती है, क्योंकि भारतीय व्यवस्था की विशेषताओं में इसे 'व्यक्तित्व की राजनीति' कहा है, अर्थात् कोई भी नेतृत्व वास्तविक विचारों के बजाए उनके व्यक्तित्वों के चारों ओर घूमती हैं. फिल्मों का नेताओं की भूमिकाएं समाज में चर्चा का विषय रहती है. यह किसी पार्टी के एक मामूली कार्यकर्ता के रुप में हो सकती है या फिर किसी नौकरशाह के रुप में. नेताओं के चरित्र एवं उनके नेतृत्व शैली को फिल्मों में देख कर दर्शक वास्तविक नेताओं के चरित्र की व्याख्या करने लगते हैं. दोनों की आपस में तुलना करने लगते हैं और कभी–कभी तो फिल्मी नेताओं के आधार पर वास्तविक नेताओं के प्रति अपनी राय भी बना लेते हैं. यही नहीं, फिल्मी नेतृत्व शैली का अक्षरश: अनुकरण भी करते हैं तथा अपने दैनिक जीवन में उसे उतारने का प्रयास करते हैं. भारतीय नागरिकों में जातीयता, वर्ग, धर्म या भाषाई आदि में अत्यंत विविधता है और यह कहना उचित है कि ऐसी चीजों में से एक जो इस तरह की विषम आबादी को एक साथ ला सकता है वह सिनेमा है.

कुछ फिल्मों का उदाहरण लिया जा सकता है जहां प्रशासनिक एवं राजनीति नेतृत्व क्षमता का वर्णन किया गया है. मसलन राजनीतिक पृष्ठभूमि की फिल्म 'प्रतिघात' में टिकट के बंटवारे के समय, एक व्यक्ति की योग्यता का वर्णन करते हुए, किसी के लिए कहता है कि अमुक व्यक्ति के खिलाफ पुलिस में कई मामले दर्ज हैं, इतने मर्डर किए हैं, अपनी बस्ती का दादा रहा है, टिकट प्राप्त करने के लिए इससे अधिक योग्यता क्या हो सकती है ? फिल्म 'इंकलाब' में अमिताभ बच्चन की मुख्य मंत्री के रुप में नेतृत्व वाली भूमिका को कोई नहीं भूल सकता है, जो चुनाव के बाद की बैठक में सभी विधायकों को गनमशीन से मार देते हैं. फिल्म 'आज का एम एल ए' में मुख्य मंत्री के तौर पर भूमिका निभा रहे राजेश खन्ना के पास रोटी बेचने वाले आकर कहते हैं कि वे अपनी रोटी का दाम 10 रुपये से बढ़ा कर 20 रुपये करना चाहते हैं तो नेता जी उनसे कहते हैं कि आप 20 रुपये नहीं, 30 रुपये करें. अगले दिन बढ़े हुए रोटी के दामों से परेशान जनता उनके पास आती है तो वे रोटी का दाम 30 रुपये से घटा कर 20 रुपये कर देते हैं. इस प्रकार वे दोनों को ही खुश कर देते हैं. यही नही 'बादशाह' फिल्म में महिला मुख्य मंत्री को उसके नेता पति द्वारा ही मारने की योजना बनायी जाती है. फिल्मों में विलेन द्वारा अक्सर यह कहते भी सुना जाता है कि उसकी पहुंच ऊपर मंत्री तक है. ऐसे कई फिल्मी उदाहरण हमें अक्सर वास्तविक जीवन में भी देखने को मिलते हैं. इसी तरह से राजनीतिक पृष्ठ भूमि पर बनी कई और फिल्में हैं जिनमें राजनीति को सेवा भाव के रुप में प्रदर्शित

किया गया है तथा उन्हें महिमा मंडित किया गया है. इसमें प्रमुख फिल्म दिलीप कुमार अभिनीति 'लीडर' का नाम आता है.

सिनेमा में वचनबद्धता एवं आत्मविश्वास को बहुत ही प्रभावी शैली में प्रदर्शित किया जाता है. जैसे फिल्म 'चक दे इंडिया' खेल के माध्यम से देश के गौरव को बचाने की प्रतिज्ञा, प्रेरणा के स्रोत का कार्य करती है. रुपहले पर्दे पर पुलिस अधिकारी की प्रभावी भूमिका का अनुकरण वास्तविक जगत में पुलिस विभाग के लोग करते हैं. फिल्म 'सिंघम' के बाद इसका प्रभाव देखा जा रहा था. फिल्म 'नायक' में नेतृत्व की पराकाष्ठा को प्रदर्शित किया गया है जो लोगों को अपनी विभिन्न क्षमताओं को बढ़ाने के लिए प्रेरणा स्वरुप माना जा सकता है. फिल्म 'क्रांतिवीर' में नाना पाटेकर का एक संवाद हवे इस बात की प्रेरणा देता है कि वह किस प्रकार अपने वचन के पक्के रहें. हिन्दी सिने जगत के नायक राजकुमार के संवाद लोगों में एक आत्मविश्वास की भावना जाग्रत करते थे. उनकी एक फिल्म 'बुलन्दी' का संवाद ''जानी, हमसे है जमाना, जमाने से हम नहीं'' काफी उत्प्रेरक रहा.

फिल्मी नेतृत्व का प्रभाव विभिन्न क्षेत्रों जैसे खेल, विज्ञान, शिक्षा, सूचना विकास, साहित्य, सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर पड़ता है. इस प्रकार के विषयों पर बनी फिल्मों के माध्यम से लोगों को इन क्षेत्रों में विकास के लिए मूल मंत्र प्राप्त होते हैं. फिल्मों में दिखाए गए वैज्ञानिक फार्मूले, उपकरण आदि उस समय बिल्कुल कल्पना स्वरुप प्रतीत होते हैं परन्तु उन पर बाद में कार्य किया गया और उन्हें मूर्त स्वरुप प्रदान किया गया. इसी प्रकार फैशन जगत पर भी इनका प्रभाव पड़ता है. न केवल अपने कपड़ों के स्टाईल से बल्कि अपने बालों के स्टाईल, चलने, उठने बैठने, बोलने अर्थात लोग इनकी इस क्षमता का भरपूर लाभ उठाते हैं. फिल्मों में दिखाया जाने वाला पारिवारिक नेतृत्व, प्रेम व भाईचारा बाहरी जगत को अत्यन्त प्रभावित करता है. संयुक्त परिवार से एकल परिवार की धारणा एवं पुन: संयुक्त परिवारों की ओर बढ़ता हुआ दौर, बुजुर्गों का सम्मान आदि इनके प्रमुख उदाहरण हैं.

कलात्मक फिल्में, जिसे हम समानान्तर सिनेमा भी कहते हैं, में जमीनी स्तर की परिस्थितियों का गहरा चित्रण किया जाता है जो अत्यन्त ही प्रभावी एवं ओजस्वी होता है. इस तरह की कई फिल्मों में समाज के बीभत्स स्वरुप को भी दर्शाया गया है जो जनमानस में अलग ही तरह की छाप छोड़ता है. मशहूर फिल्मकार श्याम बेनेगल एवं प्रकाश झा को इस प्रकार की फिल्मों के निर्माण में महारत हासिल थी. उनकी फिल्में हौसले वाली हुआ करती थीं जिनको देख कर निराश व्यक्तियों में आशा की किरण जागृत होती थी.

फिल्मों में जनता में अत्यधिक लोकप्रिय सुप्रसिद्ध नायक एवं नायिकाओं को जनता द्वारा उन्हें बहुत ही अधिक प्यार एवं सम्मान मिलता है. राजनीतिक पार्टियां क्षेत्रों में चुनाव प्रचार हेतु उनका उपयोग करती हैं तथा उनके बहाने लोगों की भीड़ जुटा कर अपनी शक्ति और नेतृत्व का प्रदर्शन करती हैं. यही नहीं उनकी लोकप्रियता को देखते हुए उन्हें चुनाव में भी उतारा जाता है. दक्षिण भारत के विभिन्न नायक और नायिकाएं जैसे कि एम.जी. रामचंद्रन, जयललिता, एन.टी. रामाराव, चिरंजीवी, वैजयंतीमाला, आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं, जिन्होंने विधायक, सांसद या राज्य सभा के सदस्य के रुप में कार्य किया है और कुछ वर्तमान में भी कार्यरत हैं. इस दिशा में आने वालों की सूची में रजनीकांत एवं कमल हसन का नाम और जुड़ गया है. हिन्दी सिनेजगत के नायक एवं नायिकाओं में सुनील दत्त, नरगिस, अमिताभ बच्चन, राजेश खन्ना, शत्रुघ्न सिन्हा, विनोद खन्ना, धर्मेन्द्र, हेमामालिनी, जया बच्चन, रेखा, गोबिन्दा आदि लोगों ने राजनीति में हाथ आजमाए और काफी हद तक सफल भी रहे हैं. आने वाले समय में, इस सूची में और भी नाम जुड़ सकते हैं. इन सभी द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से योगदान किया गया है. विभिन्न मुद्दों पर सामाजिक चेतना जगाने में इनका उपयोग किया जाता है.

भारत में सिनेमा पर नियंत्रण के लिए सेंसर बोर्ड स्थापित है. जिसकी जिम्मेदारी फिल्म की अच्छी तरह से जांच कर फिल्म को दर्शकों के सम्मुख प्रदर्शन योग्य होने का प्रमाण पत्र जारी करना है. नेतृत्व कौशल से प्रेरित फिल्मों को प्रदर्शन योग्य प्रमाणित करना काफी कठिन कार्य होता है और कई बार तो प्रदर्शन का प्रमाण पत्र जारी होने के बाद भी फिल्में विवादों में चली जाती हैं और उनका प्रदर्शन प्रभावित होता है. इस क्रम में प्रकाश झा द्वारा निर्मित 'राजनीति' एवं 'आरक्षण' चलचित्र विवादों के कारण काफी चर्चा में रहीं तथापि लोगों ने इन फिल्मों के माध्यम से काफी कुछ सीखा भी.

फिल्मों एवं नेतृत्व क्षमता की तुलना से यही परिलक्षित होता है कि फिल्मों का बाहरी समाज पर बहुत ही अधिक प्रभाव होता है. फिल्मकारों को समाज से कई विषय प्राप्त होते हैं जिनसे वे फिल्म का निर्माण करते हैं. वहीं दूसरी ओर लोकप्रिय कलाकारों का समाज पर प्रभाव रहता है जिनका लोगों द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अनुकरण किया जाता है . खेलकूद, शिक्षा, विज्ञान, अनुसंधान, राजनीति आदि विभिन्न विषयों के माध्यम से नेतृत्व कौशल का प्रदर्शन चलचित्रों में किया जाता है जिससे लोगों का ज्ञानार्जन तो होता ही है साथ ही नेतृत्व कौशल का विकास भी होता है, जो अपने आप में अद्वितीय है.

पी.सी. पाणिग्राही
के.का., मुम्बई

बच्चों की फिल्में

जब बात बच्चों के मनोरंजन और शिक्षा की हो तो हमारे पास बहुत कम विकल्प होते हैं. बहुत बार माँ बाप इस सोच में पड़ जाते हैं कि आखिर बच्चों को कौन सी फिल्में दिखाई जाएं. अंग्रेजी में बहुत सी फिल्में हैं जो बच्चों को दिखाई जा सकती है. पर आज हम बात करेंगे भारतीय सिनेमा की. समाज में बदलाव की बयार को तेज करने में भारतीय सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान है. बस जरूरत है, वैसे फिल्मों को बच्चों/युवा पीढ़ी के सामने रखने की. बच्चों को अक्सर ये डांट पड़ती रहती है कि वे यह फिल्म देख नहीं सकते. ऐसे में अक्सर बच्चे भी इस सोच में पड़ जाते हैं कि उनके लिए कौन सी फिल्म बनी है. हालांकि, हमारे सिनेमा में ऐसी बहुत ही कम फिल्में हैं, जो खासतौर पर बच्चों के लिए बनाई गई हों, मगर फिर भी बीते कुछ सालों में से चुनना हो, तो कुछ ऐसी फिल्में है जिन्हें हर बच्चे को देखनी चाहिए.

आई एम कलाम: जहां आमतौर पर बच्चों की खेल-खिलौनों की डिमांड्स खत्म नहीं होती, वहीं आई एम कलाम (I m Kalam) एक ऐसे बच्चे की कहानी है, जिसकी सिर्फ एक ही डिमांड होती है- शिक्षा. वह बहुत ही गरीब परिवार से है, जो अपना घर चलाने के लिए एक छोटे से ढ़ाबे पर काम करता है और पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बनने का ख्वाब देखता है. वह तमाम संघर्षों के बाद भी अपनी पढ़ाई पूरी करता है. उसे ऐसा करने की प्रेरणा मिलती है पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम से! वह उनका भाषण सुनता है और उन्हीं की तरह बनने की ठान लेता है. यहां तक कि वह बच्चा अपना नाम बदलकर कलाम रख लेता है और अपने आदर्श से मिलने एवं जीवन में सफलता प्राप्त करने की इच्छा रखता है. यह फिल्म बच्चों के लिए एक आदर्श फिल्म है. हालात कैसे भी हों लेकिन उसे पूरा करने का जज़्बा बनाए रखने की यह कहानी बेहद खास है. फिल्म यह बताती है कि सिर्फ भाग्य कुछ नहीं होता पर अपनी मेहनत से नियति को जरूर बदला जा सकता है. जिसे हर बच्चे को देखनी चाहिए.

स्टेनली का डब्बा : अक्सर कहा जाता है कि बच्चे तो बच्चे ही रहेंगे. स्टेनली का डब्बा फिल्म में इसी कहावत को बुना गया है. यह दस साल के बच्चे स्टेनली की कहानी है. स्टेनली स्कूल की क्लास शुरु होने से पहले स्कूल पहुंच जाता है, लेकिन वो कभी लंच लेकर स्कूल नहीं जाता. क्लास में उसके दोस्त उसके साथ खुशी-खुशी अपना लंच शेयर करते थे. लेकिन स्कूल का एक शिक्षक स्टेनली के लंच न लाने की बात से बेहद खफा रहता है. हालांकि वो टीचर खुद भी कभी लंच नहीं लाते और बच्चों का ही लंच खाते हैं. टीचर और बच्चों के बीच की इसी नोक-झोंक को फिल्म में दिखाया गया है, जो बच्चों के लिए एक बेहतरीन फिल्म है.

चिल्लर पार्टी : चिल्लर पार्टी के नाम से ही जाहिर है कि बच्चों के एक ग्रुप की बात हो रही है. मगर इस फिल्म में जिस ग्रुप को दिखाया गया है, वह कोई आम बच्चे नहीं हैं. फिल्म की कहानी कुछ ऐसे बच्चों के इर्द-गिर्द घूमती है, जो अपने कॉलोनी के एक कुत्ते को बचाने के लिए आंदोलन तक छेड़ देने से पीछे नहीं हटते. बच्चे भी अगर ठान लें, तो सोसाइटी में कितने सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं, यही इस फिल्म की थीम है. बच्चों के लिए बनाई गई यह फिल्म मनोरंजन के साथ-साथ बच्चों के हुनर को सलाम करती है. फिल्म बच्चों के जरिये आंतरिक स्तर पर होने वाली सियासत पर व्यंग्य कसती है और संवेदनशीलता का पाठ सिखाती है. एकजुट और समान अधिकार की बात करने वाली यह फिल्म भेद भाव मिटाकर एकसाथ रहने की सीख बच्चों को देती है.

तारे जमीन पर : हर बच्चा स्पेशल होता है, इस थीम पर बनी इस फिल्म में एक ऐसी ही बात बताई गई है. जो पढ़ाई में बहुत ही कमजोर है, जिसके कारण हर कोई उसे हमेशा डांटते रहता है. लेकिन वो पेंटिंग काफी बेहतर बना लेता है. जिसे उसका टीचर पहचान लेता है और सबके सामने उसके इस खास हुनर को लाता है. इस फिल्म ने बच्चों के प्रति माता-पिता की सोच को बदलकर रख दिया. इस फिल्म का उद्देश्य था कि बच्चों को उनके हुनर के अनुसार कैरियर का चयन करने देना चाहिए. यह फिल्म एक टीचर और स्टूडेंट के बीच के प्यारे रिश्ते को भी बहुत ही खूबसूरती से दर्शाती है.

बम बम बोले : यह फिल्म दर्शाती है कि छोटी-छोटी चीजों में अगर हम खुशियां ढूंढेंगे तो जिंदगी काफी खूबसूरत हो सकती है. इसके साथ-साथ यह फिल्म भाई बहन के रिश्ते के महत्व पर भी प्रकाश डालती है.

पूर्णा : यह कहानी पूर्णा मलावत की है जो तेलंगाना के एक छोटे से गांव में रहने वाली लड़की है. पूर्णा 13 साल की उम्र में माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने वाली सबसे कम उम्र की लड़की है. उसके घर के माली हालात ठीक न होने की वजह से वो स्कूल की फीस भी नहीं दे पाती. जब पूर्णा स्कूल के बच्चों के साथ पहाड़ चढ़ने के लिए ट्रिप पर जाती है तो उसके रुझान को देखकर कोच खुश होते है. यह फिल्म समाज की सच्चाई को दिखाती है और साथ ही दिखाती है कि विश्वास और इच्छाशक्ति हो तो कुछ भी नामुमकिन नहीं है. पूर्णा फिल्म में गरीब बच्चों की पढ़ाई, सरकारी स्कूल के खाने के वितरण के साथ-साथ बाल विवाह जैसे मुद्दों की ओर भी प्रकाश डाला गया है.

धनक : एक भाई- बहन के प्यार को बहुत खूबसूरती से परदे पर उकेरा गया है. यह कहानी है परी और छोटू की. परी अपने भाई की आँखों की रौशनी उसके 9वें जन्मदिन से पहले लाना चाहती है. इसके लिए वो शाहरुख़ खान को पत्र लिखती है और शाहरुख़ खान से मिलने का 300 किलोमीटर का सफर पैदल ही शुरू करती है.

हवा हवाई : अगर आप सपने देखते हैं तथा आपमें उन्हें पूरा करने की जिद तथा लगन है तो आपको कोई रोक नहीं सकता, यह फिल्म इसी बात के इर्द-गिर्द घूमती है. यह फिल्म एक ऐसे बच्चे की कहानी है जो तमाम परिस्थितियों से जूझते हुए अपना सपना पूरा करने में कामयाब होता है. दरअसल यह बच्चा एक ढ़ाबे पर काम करता है. जैसे ही वह किसी अमीर घराने के बच्चे को स्केटिंग करते हुए देखता है, उसकी जागती आंखें भी सपने देखने लगती है और फिर शुरू होता है अपने सपनों को पूरा करने का सफर. स्केटिंग के इस सपने को पूरा करने में उसका साथ देते हैं एक स्केटिंग शिक्षक और सड़क के चार गरीब बच्चे, जो उसके दोस्त हैं. किस तरह एक शिक्षक स्केटिंग की शिक्षा देता है साथ ही माँ और बच्चे के बीच जज़्बाती रिश्ता और मासूम बच्चों के बीच बेजोड़ दोस्ती. यह सब इस फिल्म में आपको देखने को मिलेगा जो बच्चों के लिए एक बेहतरीन फिल्म है.

मिस्टर इंडिया : इस फिल्म को हिन्दी सिनेमा के इतिहास में बच्चों के लिए बनी सबसे बेहतरीन फिल्मों में से एक माना जाता है. अनाथ बच्चों को अपने घर में रखने वाले अनिल कपूर किस तरह हर मुश्किल का सामना मिलकर करते है, यही इस फिल्म में दिखाया गया है. इस फिल्म का असली मकसद लोगों को यह बताना था कि हर मुश्किल हालात का मिलकर सामना करना चाहिए.

गट्टू :
यह फिल्म एक तेज दिमाग लेकिन अनपढ़ गरीब बच्चे की जिंदगी पर आधारित है. लेकिन इस बच्चे के हौसले इतने बुलंद हैं कि यह अपने सपनों को पूरा करने के लिए कुछ भी कर सकता है. गट्टू अपने चाचा की कबाड़ी की दुकान पर काम करता है. पतंगबाजी का शौक रखने वाला गट्टू हर हालात में आसमान में राज करने वाली काली पतंग को काटना चाहता है, जिसे कोई नहीं काट सका है. इसके लिए गट्टू को सबसे ऊंची छत चाहिए, जो एक स्कूल के पास है. अब गट्टू पतंग को काटने के लिए दिमाग लगाता है और वह जानबूझ कर स्कूल में पढ़ने आता है. वह बहुत सारे झूठ बोलता है. लेकिन स्कूल में एक जगह 'सत्यमेव जयते' का बोर्ड टंगा हुआ होता है जिसे देख कर वह पूछता है कि इसका मतलब क्या है? उसे बताया जाता है कि हमेशा सत्य की जीत होती है. यह सुनकर उसे अपनी गलती का एहसास होता है और वह अपनी गलती स्वीकारता है. इस फिल्म में बच्चों की शिक्षा पर ज़ोर दिया गया है साथ ही यह भी बताया गया है कि परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हो, हमेशा सत्य बोलना चाहिए.

द ब्लू अंब्रेला : इस फिल्म में एक गरीब लड़की की कहानी दिखाई गई है. यह लड़की एक नीले रंग की छाते की वजह से गांव में मशहूर हो जाती है. छाता मिलने के बाद से उसके जीवन में बदलाव आते हैं. लेकिन एक दिन उसका छाता खो जाता है. फिल्म की कहानी दुकानदार नंदकिशोर और बच्ची के इर्द-गिर्द घूमती है. फिल्म में बच्चों की मासूमियत को बड़े ही मनोरम अंदाज में प्रस्तुत किया गया है.

बच्चों को समाज का आईना बताते हुए निर्माता/निर्देशक कहते हैं कि भारत में बच्चों के मनोरंजन वाली फिल्में बहुत कम है और हर फिल्म निर्माता को बच्चों की कम से कम दो-तीन फिल्में जरूर बनानी चाहिए. मुझे लगता है कि यह ज़िम्मेदारी माँ-बाप की है कि वे अपने बच्चों को अच्छी फिल्में दिखाए क्योंकि ये ऐसी फिल्में है जिससे बच्चों को अच्छी सीख मिलती है जिससे उनके अंतरमन पर इसका प्रभाव जरूर पड़ेगा.

संतोष कुमार राम
क्षे.का., रायपुर

शॉर्ट फिल्में

जब कैमरा नाम की एक डिवाइस बनाई गयी, तो उससे जो चीजें रिकॉर्ड की गयी वो आम दिनचर्या से संबंधित चीजें थी, जैसे बच्चों का खेलना, पालतू जानवरों का व्यवहार, मौसम में बदलाव, इत्यादि चीजों को रिकॉर्ड किया गया. वास्तव में यह शॉर्ट फिल्मों से पहले की क्रिया थी जिसे हम शॉर्ट डॉक्यूमेंट्री कह सकते हैं. क्योंकि इससे वास्तविक चीजों को ही रिकॉर्ड किया गया, इसलिए यहीं से कैमरे का विकास शुरू हुआ, जिसने धीरे-धीरे फ़ीचर फिल्मों का रूप लिया, लेकिन फ़ीचर फिल्मों के बनने से पहले जो कम अवधि की फिल्में बनीं, जिनकी अवधि अधिकतम 50 मिनट की होती थी, उन्हे हम शॉर्ट फ़िल्में कह सकते हैं. अकादमी पुरस्कारों में यह अवधि 40 मिनट की होती है.

शॉर्ट फिल्में बहुत पुरानी विधा है. पहले शॉर्ट फिल्में बननी शुरू हुईं, फिर कैमेरे का विकास होने के साथ ही ये हुआ कि लंबी कहानी को दिखाया जाए, चीजों को विस्तार से दिखाया जाए, तो फ़ीचर फिल्म आ गयी, बाद में बहुत लोकप्रिय हो गईं, ये इतनी लोकप्रिय हुईं कि आज जब कोई डायरेक्टर कोई शॉर्ट फिल्म बनाता है तो यह लगता है कि यह नयी चीज है, जबकि यह नयी चीज नहीं है.

आज भी बॉलीवुड के अनुराग कश्यप हों या हॉलीवुड के क्रिस्टोफेर नोलेन, इन लोगों ने शॉर्ट फिल्मों से ही अपना करियर शुरू किया. क्रिस्टोफेर नोलेन, जैसे महान निर्देशक जिन्होंने कहीं से भी फिल्में बनाने की ट्रेनिंग नहीं ली, वो भी शॉर्ट फिल्मों के सहारे ही आगे बढ़े. इसी तरह भारत में सत्यजीत रे भी थे. निर्देशकों का शॉर्ट फिल्में बनाने का मकसद कई बार अपने माध्यम को समझने का ज़रिया भी रहा है, इन्हें हम उनकी सेल्फ ट्रेनिंग भी कह सकते हैं. कम पैसे में, कम संसाधनों में अपने कैमेरे के साथ छोटी कहानी और स्क्रीन-प्ले को मजबूत करने के लिए ये फिल्में बनाई गईं, क्यूंकि जितनी छोटी शॉर्ट फिल्में होंगी और जितनी ज्यादा प्रभावी होंगी, उतनी ही वो बेहतर होंगी.

फ़ीचर - फिल्में माध्यम हैं कहानी को विकसित करने का, लेकिन शॉर्ट फिल्मों में आपको बहुत ही सावधान रहना पड़ता है, इसीलिए शॉर्ट फिल्में गागर में सागर का प्रभाव छोड़ती हैं, मगर उनमें कसावट होना जरूरी है अन्यथा वो बन तो जाएँगी लेकिन अपने अर्थ के साथ न्याय नहीं कर पाएँगी. बच्चों के कार्टून, चार्ली चैपलिन के किस्से, प्रेरक कहानियाँ यह सब शॉर्ट फिल्मों के बड़े अच्छे उदाहरण हैं.

जब से यू-ट्यूब कल्चर शुरू हुआ है, इंटरनेट और कई तरह के सोशल-मीडिया के संसाधन आए हैं, उनके साथ ही शॉर्ट फिल्मों के विकास को पंख लग गए हैं. आज शॉर्ट फिल्मों ने फ़ीचर फिल्मों के दौर में अपनी अच्छी जगह बना ली है. तमाम यू-ट्यूब चैनल्स एवं ऐसी संस्थाएं हैं जो शॉर्ट फिल्में ही बनाती हैं. जैसे यस फ़ाउंडेशन, दैनिक जागरण फिल्म फेस्टिवल आदि. राष्ट्रीय पुरस्कारों में भी शॉर्ट फिल्मों के लिए अवार्ड की कैटेगरी रखी गयी है.

आजकल के दौर में जब लोगों के पास समय की कमी है तो लोग मनोरंजन के लिए फ़ीचर फिल्मों को देखने की योजना सप्ताहांत में करते हैं, लेकिन सप्ताह के बीच में तरोताजा होने के लिए 15 या 20 मिनट की शॉर्ट फिल्में कभी भी देख सकते हैं. अतः समय की बचत और मनोरंजन साथ होने की वजह से लोग इन्हें ज्यादा पसंद करते हैं. यह भी बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि शॉर्ट फिल्मों द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ जागरूकता भी हो रही है,कई सारे विज्ञापन भी शॉर्ट फिल्मों की तर्ज़ पर बनने लगे हैं. विज्ञापन भी अब केवल विज्ञापन न रह कर लघु कहानी कह जाते हैं. जैसे - जीवन बीमा के विज्ञापन शॉर्ट फिल्मों से प्रेरित दिखाई पड़ते हैं. शॉर्ट फिल्में आधुनिक काल में अपने भावों को चलचित्र के माध्यम से कहने की वह महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा है जो असलियत में इस माध्यम के सबसे पुराने और शुरुआती दिनों का तत्व रहा है.

राजीव यादव
क्षे.का., लखनऊ

कितने दिल टूटे कितने घर उजड़े

बम्बइया फिल्म इंडस्ट्री या बॉलीवुड को, सपनों की नगरी, सितारों की नगरी और पता नहीं क्या क्या कहा जाता है. यहाँ की चमक दमक तथा सितारों के ठाट-बाट देखकर हर युवक-युवती का सपना होता है कि वह भी यहाँ आकर भाग्य आजमाए. सितारों के पुत्र /पुत्री को छोड़ दिया जाए तो यहाँ हरेक को संघर्ष करना पड़ता है. कुछ को संघर्ष के बाद सफलता मिल जाती है पर अधिकांश को निराशा ही हाथ लगती है. रोजाना औसतन लगभग 5000 युवा यहाँ आते हैं पर 90 प्रतिशत से अधिक असफल रहते हैं. वहीं कई लोगों की राय है कि यहाँ तो हजारों में से एक को ही सफलता मिलती है.

कुल मिलाकर देखा जाए तो यहाँ लोगों के दिल ज्यादा टूटते और घर ज्यादा उजड़ते हैं.

'खून खराबा' फिल्म में रफ़ी साहब ने क्या खूब गाया है-

'यहाँ कितने ही दिल टूटे , हाय री दुनिया तेरी रीत नहीं बदली.
कितने दिल टूटे'

राजा नाम का युवक आसाम से मुंबई पिछले पाँच वर्ष पहले अभिनेता बनने का ख्वाब संजोकर आया था. उसके साथ समस्या थी कि उसकी हिन्दी में असमिया भाषा का प्रभाव था. अच्छा काम मिलने के लिए उसे अपनी हिन्दी में सुधार करने की आवश्यकता थी. लेकिन उसने यह सच्चाई स्वीकार नहीं की और उसे सबसे अधिक हताशा या निराशा तब हुई जब एक धोखेबाज ने फिल्म में रोल देने का लालच देकर उसका धन हड़प लिया और भाग गया.

बिहार से एक युवक मुंबई में कुछ काम मिलने की आशा में आया था, लेकिन अपने पूर्वांचली लहजे के कारण उसे काम नहीं मिल सका. उसके बाद वह रियल इस्टेट एजेंट बना और बाद में असिस्टेंट डाइरेक्टर (सहायक निर्देशक) के रूप में काम करने लगा. लगभग 4-5 प्रतिशत युवक संघर्ष कर सहायक निर्देशक बन जाते हैं. लेकिन उनका जीवन भी बहुत तनाव पूर्ण हो जाता है क्योंकि उन्हें रोजाना के 200-250 रुपये ही मिलते हैं. जो मुंबई जैसे शहर में जीवन यापन के लिए पर्याप्त नहीं है. उन्हें 17-18 घंटे तक काम करना पड़ता है और अधिक काम की वजह से हृदय आघात या अन्य शारीरिक बीमारियों का शिकार बनते हैं.

कुछ लोग कास्टिंग डाइरेक्टर बन जाते हैं. उनकी तो उससे भी बुरी स्थिति आती है.

सुरेश जो कि टीवी सीरियलों में छोटे-मोटे रोल कर रहा था. उसकी उम्र 40 से अधिक है. लेकिन सब को 35 ही बताता है. वह कभी-कभार समन्वयक का अर्थात उसी की तरह काम पाने की उम्मीद में आये हुए युवाओं से कमीशन लेकर उन्हें छोटे-मोटे रोल दिलाने का काम किया करता था.

हर व्यक्ति को अपनी योग्यता की पहचान होनी चाहिए और उसी क्षेत्र में कोशिश करनी चाहिए. जैसे अभिषेक ने फिल्म स्टार बनने का सपना छोड़कर अपनी ऊर्जा टीवी सीरियल या धारावाहिक निर्माता निदेशक बनने में लगा दी.

उम्र भी निर्णायक घटक नहीं है. जैसे सुप्रसिद्ध अभिनेता बोमन ईरानी पहले फोटोग्राफर थे. उन्होंने अभिनय के क्षेत्र में अपना हुनर आजमाने का काम देरी से शुरू किया.

अभिनय के लिए प्रतिभा का होना आवश्यक होता है, सिर्फ अच्छे नाक-नक्श और स्टाइलिश फोटोग्राफ से ही व्यक्ति अभिनेता नहीं बन जाता. अभिनय स्कूल भी केवल झाँसा देने की दुकानों से अधिक कुछ नहीं हैं.

एक छब्बीस वर्षीय लड़की अमृता जो टीवी चैनल में अच्छा काम कर रही थी. 3 साल में उसे 2 प्रमोशन भी प्राप्त हो गये थे और मुंबई के अच्छे इलाके में उसका एक फ्लैट भी था. उसने फिल्म में अपना भाग्य आजमाने की कोशिश की. आज उसके पास न तो नौकरी है और न ही पैसा है. उसे फ्लैट अपने दोस्तों के साथ साझा करना पड़ रहा है. वह रोजाना चार ऑडीशन्स के लिए जाती है. लेकिन अब तक भाग्य ने साथ नहीं दिया.

एक छोटे से गाँव से आया हुआ राम सपनों की नगरी मुंबई में अपना कैरियर बनाने आया था. उसे आठ साल हो चुके हैं. उसके पास न तो रहने के लिए घर है और न खाने के लिए पैसा है और न कोई काम! हार कर उसे पार्ट टाइम दर्जी का काम करना पड़ रहा है तथा आज उसे एक कालोनी के पार्क में सोना पड़ रहा है.

ऐसा भी समय आता है जब लोगों को कुछ मौके मिल जाते हैं. यही चालीस वर्षीय शिखा जोशी के साथ हुआ. जिसे किसी तरह 'बीए पास' में एक रोल मिल गया. लेकिन दूसरा मौका नहीं मिला और बार-बार मिलते तिरस्कार की वजह से उसने गला काटकर अपनी जान दे दी.

इकतीस वर्षीय दिल्ली विश्वविद्यालय से मानद स्नातक मुकेश पिछले 9 वर्षों से फिल्म उद्योग में संघर्ष कर रहा है. इतनी योग्यता होने के बाद भी आज

उसके पास बस से जाने के लिए पैसे नहीं है और वह ऑडीशन्स के लिए पैदल ही जाता है. उस पर लाखों का कर्ज है और वह दिल्ली इस डर से वापस नहीं जाना चाहता है कि सारी जिंदगी लोग उसका मजाक उड़ाएंगे.

विशेषज्ञ कहते हैं सफलता के लिए आवश्यक हैं– अभिनय प्रतिभा, संवाद अदायगी एवं व्यक्तित्व.

फिल्म जगत का एक बदसूरत पहलू यह है कि संघर्षरत युवक युवतियों को निम्न समझौते करनें पड़ते हैं–

1. कास्टिंग काउच–फिल्म में काम देने का प्रलोभन देकर निर्माता/निर्देशक यौन संबंध बनाने की मांग करते हैं. 2005 में किये गये एक स्टिंग आपरेशन के दौरान एक बड़े अभिनेता का इस तरह के मामलों में सम्मिलित होना पाया गया है.
2. मोलेस्टेशन (उत्पीड़न या छेड़छाड़)–बहुत सी अभिनेत्रियाँ इसका शिकार हो चुकी हैं. इसमें भी काम का लालच देने के बहाने अभिनेत्रियों के साथ मनमानी की जाती है.
3. दयनीय स्थिति में रहना–संघर्षरत व्यक्ति बड़े शहर में कैरियर बनाने की चाह में बहुत दयनीय स्थिति में रहते हैं जो कि उनके जीवन एवं स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है. कई बार तो वे इसके चलते अनेक बुरी आदतों के शिकार बन जाते हैं.
4. अपने साधनों से अधिक धन खर्च करना–फिल्म जगत में अपना कैरियर बनाने के लिए महंगे फोटोशूट और मेकओवर (कायाकल्प) के लिए काफी धन खर्च करना पड़ता है. संघर्षरत व्यक्तियों को अपने साधन से अधिक खर्च करते हुए देखा जाता है.
5. आत्मसम्मान के साथ समझौता–जैसा कि ऊपर बताया गया है कि संघर्षरत युवाओं को अपने आत्म सम्मान एवं स्वाभिमान के साथ बार–बार समझौता करना पड़ता है.
6. जीवन यापन के लिए निकृष्ट व्यवसाय करना–जीवन यापन करने के लिए युवतियों को बार– नर्तिका और उच्च श्रेणी व्यक्तियों का एस्कौर्ट भी बनना पड़ता है. इसके साथ ही निम्न स्तरीय अश्लीलता से परिपूर्ण फिल्मों में अभिनय करने का काम भी ये युवा करने लगते हैं.
7. आत्महत्या–जब संघर्षरत व्यक्तियों को लगता है कि उनके आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं है और सभी दरवाजे बंद हो चुके हैं तो उन्हें आत्महत्या ही एक रास्ता सूझता है. जीवन का अंत केवल व्यक्ति विशेष का अंत ही नहीं होता, बल्कि इससे कई परिवार उजड़ जाते हैं. एक आत्महत्या हजारों लोगों की आशाओं का अंत कर देती है.
8. परिवार से संबंध विच्छेद–छोटे शहरों से आने वाले युवाओं के पारिवारिक सदस्य नहीं चाहते हैं कि वे इस तरह के कामों को अपनाएं. ऐसे में संघर्षरत युवा अपने परिवारों से संबंध विच्छेद कर लेते हैं या परिवार उनसे कोई संबंध रखना नहीं चाहते.
9. घोर निराशा–बार–बार मिलने वाली असफलताओं के चलते संघर्षरत युवा घोर निराशा एवं अवसाद के गर्त में समा जाते हैं. फिल्म फैशन में इसके जीवंत उदाहरण को देखा जा सकता है.

वो पत्ता आवारा न बनता तो क्या करता,
न हवाओं ने बख्शा, न शाखों ने सहारा दिया

एक ऐसी ही दुकान है 'फर्स्ट कट' एप जिसने ये समस्या कम कर दी है, अभिनेता/अभिनेत्री तथा फिल्मकारों को एक धरातल दिया है . इच्छुक युवक युवती अपने अभिनय के विडियो एप पर अपलोड कर देते हैं और फिल्मकार प्रोडक्शन हाउस, कास्टिंग एजेंसी वीडियो से प्रतिभा का अंदाज़ लगा लेते हैं.

कितने घर उजड़े

फिल्म उद्योग में सफलता पाने के बाद भी जीवन के खुशहाल होने की गारंटी नहीं है. ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि सफलता प्राप्त करने के बाद अभिनेता/अभिनेत्री अपने बचपन के साथी को भूल गए. जैसे दीपिका पादुकोण, रणबीर कपूर, प्रियंका चोपड़ा, अनुष्का शर्मा, अर्जुन कपूर आदि.

सफलता के अगले पड़ाव पर कुछ पुरानी जोड़ियाँ टूटीं और नए साथी बने. जैसे बोनी कपूर एवं मोना शौरी, संजय दत्त और रिया पिल्लै, आमिर खान और रीना, कमल हसन एवं सारिका, महेश भट्ट और किरण भट्ट आदि.

रूपहला पक्ष

ऐसा नहीं है कि फिल्म जगत में सब कुछ धुँधला ही है. इसका रूपहला पक्ष भी है जो इसे आकर्षण का केन्द्र बनाता है. कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जिन्हें संघर्ष के बाद सफलता मिली. जैसे मनोज कुमार, दिलीप कुमार, अमिताभ बच्चन, शाहरुख खान, माधुरी दीक्षित और अक्षय कुमार आदि.

कुछ जोड़ियाँ सलामत हैं जैसे अमिताभ बच्चन और जया बच्चन, शाहरुख खान और गौरी खान.

सारांश

यदि हम फिल्म निर्माण की प्रक्रिया पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि फिल्म के मंचन का संपूर्ण सेट वास्तविकता से कोसों दूर होता है. माया नगरी की चकाचौंध, अभिनेताओं एवं अभिनेत्रियों की जीवन शैली बहुत आकर्षित करती है. किंतु हकीकत इससे कोसों दूर होती है. इसका एहसास जुनूनी युवाओं को बहुत बड़ी कीमत चुकाने के बाद होता है. जो संभल जाते हैं वे तो अपने जीवन को आयाम दे देते हैं, किंतु जो नहीं संभल पाते उनके लिए जीवन भयावह हो जाता है. वे एक भ्रमजाल में फंसते हैं, इसके साथ ही इस जगत में अपना सफल कैरियर बनाने वाले भी अपने पारिवारिक जीवन को लेकर बहुत कठिनाइयाँ झेलते हैं. आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने परिचय में आने वाले ऐसे युवाओं का सही मार्गदर्शन करें.

आँखें नम, दिल में है गम फिर तू क्यों रो रहा है,
सब कुछ पाने की चाहत में, सबको क्यों खो रहा है.
सबको खुद से खोकर खुद को खुद से पा गया ,
जीना नहीं है आसां, ये समझ में आ गया ...

बी पी शर्मा
स्टाफ प्रशिक्षण केंद्र, भोपाल

चला मुरारी 'हीरो' बनने...

हमारे देश में भाग्य और तकदीर को बहुत महत्व दिया जाता है. आज के वैज्ञानिक युग में इस पर यकीन करना भले ही मुश्किल हो परंतु कहीं न कहीं आकर जीवन में हमें मानना या कहना ही पड़ता है कि यह सब भाग्य का खेल है या फिर जो तकदीर को मंजूर! ऐसे में यदि व्यक्ति स्वयं के बलबूते पर कुछ हटकर करना चाहे तो उसे कहते हैं, पापड बेलना! डॉक्टर का बेटा डॉक्टर बनना चाहे, वकील का बेटा वकील, नेता का बेटा नेता वगैरह वगैरह उन्हें घर से हर प्रकार की मदद मिल जाती है क्योंकि घर पर उसे वही माहौल और वातावरण मिल जाता है परंतु यदि वह अलग हटकर कुछ और बनना चाहे तो घर से ही विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है. यदि वह अपने मनसूबों में किसी भी वजह से कमजोर पड़ जाता है तो उसका निर्णय प्रतिकूल भी हो सकता है तथा ऐसे में जीवन में वह जो तैयारी करता है, अपनी इच्छा से कुछ बनने की परंतु बन कुछ और जाता है.

फिल्मी दुनियां की यदि हम बात करें तो वहां जीवन के इस तरह बहुत उदाहरण हमारे सामने दृष्टिगोचर होते हैं.

जिंदगी के उतार चढ़ाव यानि जीवन में बनने तो कुछ और चले थे पर बन गये कुछ और. ऐसा ही, अपने कार्यक्षेत्र में हीरो बन गये का सबसे प्रबल उदाहरण है हमारी फिल्मी दुनिया के महानायक **अमिताभ बच्चन**. अच्छी नौकरी पर थे और ऑल इंडिया रेडियो में उद्घोषक बनने के लिए ऑडिशन दिया था लेकिन रिजेक्ट हो गये और फिर 'सात हिन्दुस्तानी' में मिले चांस की बदौलत उन्हें फिल्मों में प्रवेश का मौका मिला और आज जिस मुकाम पर वह हैं, आप सभी वाकिफ हैं. **प्रेम चोपड़ा** के संबंध में यह बात बेहद प्रसिद्ध है कि उनके घरवाले चाहते थे कि वो पढ़ लिख कर डॉक्टर बने परंतु वे मुंबई आ गये. वो आये तो थे फिल्मो में हीरो बनने परंतु फिल्मकारों ने उन्हें कोई ज्यादा तवज्जो नहीं दिया, छोटे मोटे रोल करते रहे. एक दिन उन्हें 'बॉबी' में सिर्फ एक मात्र डायलॉग बोलने के लिए राजकपूर ने मना लिया और फिल्म के हिट होते ही उनका वही एक डायलॉग भी लोगों की जुबान पर आ गया और वे विलेन के रूप में छा गये .. हीरो विलेन बन गया परंतु वास्तविक जीवन में वह हीरो बन गये.

मैंने पहले ही कहा है कि यह शीर्षक बेहद ऊथल पुथल वाला है. जो कभी सटीक बैठता है तो कभी नहीं. कहीं कहीं तो मुरारी 'हीरो' बन गये और कहीं- कहीं बने बनाए 'हीरो' और अधिक की चाह में जीरो बन गये.

मुरारी जो हीरो बन गये, उनमें अमिताभ बच्चन, जो कभी एक शिपिंग कम्पनी में एग्जिक्यूटिव थे बाद में फ्राईट ब्रोकर. फिर रेडियो में किस्मत आजमाने गये और रिजेक्ट हो गये, फिल्मों में मौका मिला और आज वे सदी के कलाकार हैं. नवाजुद्दिन सिद्दिकी जो पहले कैमिस्ट थे. फिर दिल्ली में वॉचमैन और फिर मुंबई में स्टार बने. बोमन इरानी जो कभी वेटर थे, अपनी ही मां द्वारा चलाई जा रही बेकरी में काम करते थे, बाद में मुंबई की फिल्मों में चमके. शाहरूख खान जो स्पोर्टसमैन बनना चाहते थे परंतु किस्मत और पांव पर लगी चोट ने उन्हें स्पोर्टस्मैन नहीं बनने नहीं दिया और 'फौजी' सीरियल में किस्मत आजमा बैठे. आज वे किस मुकाम पर हैं, सभी जानते हैं. सुनिल दत्त कभी बेस्ट बस में कंडक्टर हुआ करते थे. उसी प्रकार से रजनीकांत भी बस में कंडक्टर हुआ करते थे और फिल्मों में आते ही उनकी प्रसिद्धी कहां तक जा पहुंची, यह कहने की आवश्यकता नहीं है. देवानंद साहब सेंसर बोर्ड में क्लर्क थे, अरशद वारसी पहले घर घर जाकर कॉस्मेटिक्स सामान बेचते थे. अक्षय कुमार की कहानी किसी से छुपी नहीं है. वे भी पहले वेटर हुआ करते थे, विद्या बालन कभी विज्ञापन गर्ल के नाम से जानी जाती थीं. ऐसे कई कलाकार हैं जो पहले कुछ और काम करते थे परंतु उन्होंने जिंदगी में हार नहीं मानी और जिस मुकाम को चाहते थे उसे वे पा गये या उन्हें किस्मत ने जो तोहफा दिया उसे उन्होंने बड़ी ही शिद्दत के साथ स्वीकारा, मेहनत की और दुनियां के सामने एक 'मील का पत्थर' बनकर स्वयं को साबित किया अर्थात मुरारी 'हीरो' बन गये.

वहीं कई ऐसे कलाकार भी हैं जिन्होंने अपने पांव को जमीन पर न रख एक लम्बी छलांग लगाने की कोशिश की और फिर वे न तो इधर के रहे और न उधर के. मेरा इशारा, उन कलाकारों की ओर है जो छोटे पर्दे यानि टीवी कैरियर में किस्मत आजमा रहे थे और प्रसिद्धि पाते ही बड़े पर्दे पर पहुंचने के लिए छोटे पर्दे को ठुकरा गये. जिसमें सबसे पहले नाम आता है अमन उपाध्याय का. आपको याद होगा कि टीवी सीरियल 'क्यूंकि सास भी कभी बहू थी' में बहु के पति यानि अमन ने सीरियल की बुलंदियों में उसे छोड दिया और फिर फिल्मों में किस्मत आजमाने गये और हीरो के रूप में उनकी दो फिल्में आईं भी- 'धुंध' और 'एलओसी' पर दोनों फ्लॉप! और अमन भी फ्लॉप. राजीव खण्डेलवाल, आमना श्रोफ, एजाज़ खान ये सभी 'कहीं तो होगा' सीरियल से आये हुए मशहूर थे औ वे छोटे पर्दे को बाय बाय करते हुए और प्रसिद्धि पाने, ज्यादा कमाने के लिए फिल्मों में चले गये, जहां राजीव की 'आमीर', एजाज की 'मीरा बाई' और आमना की दो फिल्में आई, वो सभी फिल्में फ्लॉप हुईं और साथ ही ये तीनों कलाकार भी फ्लॉप हो गये. गुरमीत चौधरी 'रामायण' सीरियल में राम की भूमिका में थे, सभी ने उन्हें बहुत पसंद किया था परंतु ये भी फिल्मों में किस्मत आजमाने आ गये और छोटे पर्दे को 'बाय बाय' कर दिया, उनकी फिल्म 'ख्वाहिशें' फ्लॉप और ये भी फ्लॉप हो गये. जय भानुशाली और मनीष पाल दोनों ही टीवी पर अच्छे सूत्रधार रहे हैं. छोटे पर्दे पर पाई अपनी प्रसिद्धी को

भुनाने के लिए ये भी फिल्मों में अपना भाग्य आजमाने आ गये, जय की 'हेटस्टोरी 2', 'एक पहेली लीला' जबकि मनीष की 'मिक्की वायरस' फ्लॉप हो गईं और ये भी. लेकिन इन्होंने अपनी सूत्रधार की भूमिका को आगे बढ़ाया. ऐसे कई अनगिनत नाम हैं, करन सिंह ग्रोवर, हंसिका मोटवानी, सलिल अंकोला, समीर कोचर, अमन वर्मा, श्रुति सेठ, सारा देसाई, अनीता रेड्डी, प्राची देसाई, करण कुंद्रा जिन्होंने छोटे पर्दे पर बहुत प्रसिद्धि पाई और फिल्मों में कदम रखने के लिए उन्हें बड़े पर्दे पर आवश्यक प्रसिद्धी नहीं मिली और वे फ्लॉप हो गये. फिर से छोटे पर्दे पर अपने फैन का विश्वास पाने और प्रसिद्धि पाने में असफल रहे. इनमें से कुछ ने तो समय रहते स्वयं को पहचान लिया और स्वयं की गलती को तुरंत सुधार लिया. जिनमें जय भानुशाली, मनीष पाल और श्रुति सेठ इत्यादि हैं और आज भी छोटे पर्दे पर एंकर के रूप में स्वयं की पहचान बनाए हुए हैं परंतु बाकी हमारे शेष सभी कलाकार 'हीरो' से 'जीरो' बन गये. यहां हम कपिल शर्मा को कैसे भूल सकते हैं? टीवी पर थोड़े से ही समय में कॉमेडी किंग के रूप में प्रसिद्ध हो गये और उन्होंने भी वही गलती कर दी जो कई कलाकार पहले कर चुके थे. ये भी अपनी किस्मत आजमाने फिल्मों में पहुंच गये और पहली ही फिल्म के फ्लॉप होते ही ये भी फ्लॉप हो गये. आज फिर से टीवी में अपनी पहचान पाने के लिए ये कलाकार संघर्षरत हैं. ये भी हमारे वो 'हीरो' हैं जो लगभग 'मुरारी' बन चुके हैं.

बात यदि शीर्षक की करें तो मैं यहां यह अवश्य कहना चाहूंगा कि प्रत्येक कहावत में छुपे ज्ञान को हमें समझना चाहिए क्योंकि ये सभी कहावतें बेवजह नहीं बनी हैं. ये किसी न किसी की गलतियों, अतिमहत्वाकांक्षाओं के कारण ही अवतरित हुई हैं. हर व्यक्ति को स्वयं की सीमाओं और क्षमताओं को पहचानना जरूरी है. यदि वो जीवन में कुछ बनता है तो इन्हीं दो बातों की बदौलत ही बनता हैं. वर्ना जीवन में हमारी जिद, हमारी चाह और हमारी पसंद तो बेमानी हैं. अत: यदि आप स्वयं को कुछ अलग बनाने का निर्णय लेते हैं तो इससे पहले कि कोई आपको कहे कि 'चला मुरारी हीरो बनने', आप अपनी क्षमताओं और सीमाओं को बढ़ाएं और आगे बढें. जीवन में सत्य का ध्यान सदैव रखें और सत्य यही है कि आप एक मनुष्य हैं और कलाकार के रूप में या सफल व्यक्ति के रूप में दूसरे मनुष्य से प्रेम और प्यार तभी पा सकेंगे जब वह स्वयं की छवि में आपको देखता है. अर्थात सफलता के मुकाम पर आप अपनी जमीन को कभी न छोड़ें, सफलता/प्रसिद्धी आपके कदमों में होगी और आप दूसरों के दिलों में एक 'हीरो' होंगे. साथ ही उनके जीवन में आप मील का 'पत्थर' सिद्ध होंगे.

प्रदीप सिंह
क्षे.का. अहमदाबाद

गुजराती फिल्म उद्योग

गुजराती सिनेमा, जिसे अनौपचारिक रूप से ढ़ोलीवुड या गोलीवुड कहा जाता है, गुजराती भाषा का फिल्म उद्योग है. गुजराती फिल्म उद्योग के लिए ढ़ोलीवुड नाम एक डबल-हेड ड्रम ढ़ोल के उपयोग के कारण प्रचलित हुआ है. यह भारतीय सिनेमा के प्रमुख क्षेत्रीय और स्थानीय फिल्म उद्योगों में से एक है, जिसने अपनी स्थापना के बाद से एक हजार से अधिक फिल्मों का निर्माण किया है. मूक फिल्म युग के दौरान फिल्म उद्योग में कई गुजराती नागरिक थे. 1913 और 1931 के बीच गुजरातियों के स्वामित्व वाली बीस अग्रणी फिल्म कंपनियां और स्टुडियो थे जो ज्यादातर मुंबई में थे और उनमें कम से कम 44 प्रमुख गुजराती निदेशक थे. 1947 में भारत की आजादी तक, केवल 12 गुजराती फिल्मों का निर्माण हुआ था. 1970 के दशक में गुजरात सरकार ने कर में छूट और सब्सिडी की घोषणा की जिसके परिणामस्वरूप फिल्मों की संख्या में वृद्धि हुई, लेकिन उनकी गुणवत्ता में कमी भी आई. गुजरात राज्य सरकार ने 2005 में फिर से कर में छूट की घोषणा की जो 2017 तक जारी रही.

ओरिएंटल कंपनी द्वारा निर्मित मूक फिल्म 'नरसिंह मेहता' (1920) जिसमें गुजराती गीत 'वैष्णव जन' शामिल था, जिसे स्क्रीन पर प्रासंगिक दृश्यों के साथ सिनेमाघरों में दर्शकों और संगीतकारों द्वारा गाया गया था. फिल्म 'विदुर' को द्वारकादास सम्पत ने चित्रित किया था, जिन्होंने उसमें गांधी टोपी पहनी थी जोकि उस समय में महात्मा गांधी की अगुवाई में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लिए एक संकेत था. फिल्म में एक गुजराती गीत था, 'रुडो मारो रेंटियो', 'रेंटियामा निकले तार', 'तारे तारे थे भरतनो उद्धार'. जो उस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ध्वज पर बने कताई चक्र (रेंटियो) को इंगित करता था. यह भारत में प्रतिबंधित होने वाली पहली फिल्म थी इस पर ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया था. 1922 में इसे फिर से धर्म विजय के नाम से रिलीज़ किया गया था. 1931 की पहली पूर्ण लंबाई सहित भारतीय आवाज वाली फिल्म 'आलम आरा' को रिलीज करने से पहले, एक छोटी गुजराती सवाक फिल्म 'चाव चावनो मुराबो' को 4 फरवरी 1931 को बॉम्बे में रिलीज़ किया गया था. 9 अप्रैल 1932 को गुजराती टॉकीज की पहली पूर्ण लंबाई वाली 'नरसिंह मेहता' फिल्म गुजराती सिनेमा की असली शुरुआत को दर्शाती है. उसके बाद 1932 में 'सती सावित्री', जो सावित्री और सत्यवान के महाकाव्य पर थी और 1935 में हास्य कॉमेडी 'घर जामई' आई. 1932 और 1940 के बीच 12 फिल्में बनी थीं. 1941 से 1946 तक द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान कच्चे माल की कमी के कारण फिल्म निर्माण नहीं किया गया.

1947 में भारत की आजादी के बाद, गुजराती फिल्मों के उत्पादन में वृद्धि हुई थी. अकेले 1948 में 36 फिल्में बनाई गई थीं. 1946 और 1952 के बीच संत, सती या डकैती कहानियों से संबंधित 27 फिल्मों सहित 74 फिल्में बनाई गईं. महा गुजरात आंदोलन के बाद 1 मई 1960 को बॉम्बे राज्य से गुजरात और महाराष्ट्र इन दो अलग-अलग भाषाई राज्यों का गठन हो गया. गुजराती फिल्म उद्योग पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा क्योंकि बॉम्बे, फिल्म निर्माण का केंद्र महाराष्ट्र में ही छूट गया था. गुजरात में प्रमुख फिल्म निर्माण गृहों और स्टुडियों की कमी थी जिसके परिणामस्वरूप गुणवत्ता और फिल्मों की संख्या

में गिरावट आती गई. 1970 के दशक में, गुजरात सरकार ने गुजराती फिल्मों के लिए सब्सिडी और कर में छूट की घोषणा की जिसके परिणामस्वरूप फिल्म निर्माण में फिर वृद्धि हुई. 1972 में वडोदरा में एक स्टुडियो की स्थापना हुई थी. इस नीति से मौद्रिक लाभों में रुचि रखने वाले लोगों का ध्यान इस ओर हुआ परंतु उनके पास कोई तकनीकी या कलात्मक ज्ञान नहीं था, परिणामस्वरूप फिल्मों की गुणवत्ता में भी कमी आ गई. 1973 के बाद देवताओं और डकैतों पर बड़ी संख्या में फिल्में बनाई गईं. गोविंद सरैय्या द्वारा निर्देशित 'गुनसुन्दरिनो घरसंसार' (1972) ने 20 वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों में गुजराती में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म के लिए राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीता. 1973 से 1987 तक अरुण भट्ट ने हिंदी फिल्मों की लागत के अनुरूप कई फिल्मों का निर्माण किया. 1980 के दशक की शुरुआत में उनकी फिल्म 'पूजा ना फूल' को गुजरात सरकार की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला और क्षेत्रीय पुरस्कार विजेता फिल्मों के लिए दूरदर्शन पर रविवार के स्लॉट में उसका प्रसारण किया गया. 1998 में गोविंदभाई पटेल द्वारा निर्देशित 'देश रे जोया दादा परदेश जोया' बहुत सफल रही और सुपरहिट रही. फिल्म ने 22 करोड़ रुपये कमाए. गुजराती सिनेमा में यह राशि सबसे ज्यादा थी इस फिल्म को लगभग 1.5 करोड़ लोगों ने देखा.

सबसे सफल गुजराती कलाकारों और प्रोड्यूसर्स में से एक थे, उपेंद्र त्रिवेदी; उन्होंने पन्नालाल पटेल द्वारा उसी नाम के उपन्यास पर आधारित मनवी नी भवाई (1993) का निर्माण किया, उसमें उन्होंने अभिनय कर उसे निर्देशित भी किया. इस फिल्म की व्यापक सराहना की गई और 41 वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों में गुजराती में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म के लिए इसे राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किया गया. अरविंद त्रिवेदी, महेश कनोडिया, नरेश कनोडिया, राजेंद्र कुमार, असरानी, किरण कुमार और हितेन कुमार के पास लंबे और सफल करियर का अनुभव था. रमेश मेहता और पी. खारसानी अपनी हास्य भूमिकाओं के लिए लोकप्रिय थे. लोकप्रिय गुजराती फिल्म अभिनेत्रियों में शामिल हैं: मल्लिका साराभाई, रीता भादुरी, अरुणा ईरानी, जयश्री टी., बिंदू, आशा पारेख और स्नेहलता. अविनाश व्यास गुजराती सिनेमा के प्रमुख संगीतकारों में से एक थे जिन्होंने 168 गुजराती फिल्मों और 61 हिंदी फिल्मों के लिए संगीत दिया था. 1981 तक कुछ 368 गुजराती फीचर फिल्मों और 3562 गुजराती लघु फिल्मों का निर्माण किया गया था. गुजराती फिल्मों को बढ़ावा देने के लिए गुजरात फिल्म डेवलपमेंट कॉरपोरेशन (जीएफडीसी) की स्थापना की गई थी.

वित्तीय निवेश और लाभ की वसूली करने के साथ-साथ बदलते समय, प्रौद्योगिकी और जनसांख्यिकीय के अनुकूल न होने के कारण गुजराती फिल्मों की गुणवत्ता में कमी आई है. ग्रामीण दर्शकों के लिए कम बजट वाली फिल्मों की आवश्यकता थीं और शहरी दर्शक टेलीविजन और बॉलीवुड फिल्मों की ओर चले गए क्योंकि उन्हें हिंदी भाषा की उचित समझ भी थी.

2005 में, गुजरात सरकार ने यू एवं यू/ए प्रमाणित फिल्मों के लिए मनोरंजन कर में 100% की छूट और प्रमाण पत्रित फिल्मों पर 20% कर में छूट की घोषणा की. सरकार ने गुजराती फिल्मों के लिए 5 लाख सब्सिडी की भी घोषणा की. कर में छूट और ग्रामीण उत्तर गुजरात और विशेष रूप से बनसकंठा जिले में फिल्मों की मांग में वृद्धि के कारण 2005 के बाद उत्पादित फिल्मों की संख्या में वृद्धि हुई. 2009 और 2010 में प्रति वर्ष उत्पादित फिल्मों की संख्या 60 से अधिक थी. 2012 में गुजराती सिनेमा ने रिकॉर्ड किया और 72 फिल्में बनाईं. विक्रम ठाकुर ने कई फिल्मों में अभिनय किया जिनमें एक वर पियु ने मालवा आवे' (2006) शामिल है. ग्रामीण दर्शकों के लिए बनाई गई उनकी छह फिल्मों ने 3 करोड़ कमाए. उन्हें विभिन्न मीडिया द्वारा गुजराती सिनेमा का वर्तमान सुपरस्टार माना जाता है. हितेन कुमार, चंदन राठौड, हितु कनोडिया, ममता सोनी, रोमा मानेक और मोना थिबा ग्रामीण दर्शकों के बीच लोकप्रिय हैं. अगस्त 2011 में गुजराती फिल्म उद्योग ने टॉकिजों की शुरुआत के बाद से एक हजार से अधिक फिल्मों का निर्माण कर मील का पत्थर पार किया. जिसने ज्ञान कोर्रिया द्वारा निर्देशित द गुड रोड (2013) ने 60 वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों में गुजराती में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म का पुरस्कार जीता और बाद में यह ऑस्कर में भारत का प्रतिनिधित्व करने वाली पहली गुजराती फिल्म बन गई.

अभिषेक जैन द्वारा निर्देशित 'केवी रित जईश' (2012) और 'बे यार' (2014), दोनों ने शहरी दर्शकों को आकर्षित करने में व्यावसायिक रूप से और समीक्षात्मक रूप से सफलता प्राप्त की. 'केवी रित जईश' और 'बे यार' सिनेमाघरों में क्रमश: सोलह और पचास सप्ताह तक चली. दोनों फिल्मों को दुनिया भर में रिलीज किया गया था. डिजिटल प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया ने फिल्म उद्योग को अपनी पहुंच का विस्तार करने में मदद की. सिद्धार्थ रेंडरिया द्वारा अभिनित 'गुज्जुभाई द ग्रेट' और 'छेलो दिवस' को 2015 की हिट फिल्में घोषित किया गया. 'रोंग साइड राजू' (2016) 'और ध' (2017) ने क्रमशः 64 वें और 65 वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों में गुजराती की सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म का पुरस्कार जीता. 'शुभारंभ' (2016), 'केरी ऑन केसर' (2017), 'करसंदास पे एंड यूज' (2017), 'लव नी भवाई' (2017), 'चल मन जितवा जईए' (2017) ने पुनर्जीवित फिल्म उद्योग की स्थापना में मदद की. गुजराती फिल्मों का बॉक्स ऑफिस संग्रह 2014 में 7 करोड़ से बढ़कर 2015 में 55 करोड़ हो गया है जो कि निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है.

हर्ष ओझा
क्षे.का., अहमदाबाद

फिल्मों का आकर्षण - स्याह पक्ष

कहते हैं, सिनेमा समाज पर सबसे अधिक प्रभाव डालती है. बच्चों से लेकर बुजुर्ग तक, पुरुष से लेकर महिला तक हर कोई इसके प्रभाव से प्रभावित दिखता है. समाज की तरफ से आरोप लगाए जाते हैं कि फिल्में पीढ़ी को बिगाड़ रही हैं. जबकि फिल्म निर्माता यह कहकर अपना बचाव करते हैं कि हम तो वही दिखा रहे हैं जो समाज में घटित हो रहा है या जिसे समाज पसंद करता है. इस बहस का कोई भी नतीजा निकलने दीजिए क्योंकि दोनों के अपने- अपने तर्क हैं. हाँ, बात प्रभाव की करें तो यह बात सौ फीसदी सही है कि सिनेमा समाज को बहुत प्रभावित करता है. यहाँ हम सिनेमा के आकर्षण और प्रभाव के सिर्फ स्याह पक्ष के बारे में चर्चा करने जा रहे हैं. अतः यह बात सही है कि सिनेमा का समाज पर होनेवाला प्रभाव आज कल बहुत चिंताजनक स्तर पर पहुँच गया है. सिनेमा ने कई परिवारों को तोड़ दिया है और उनका सुख चैन छिन कर उनके जीवन में आग लगा दी है. अनेक युवाओं को अपराधों की गर्त में ढ़केल दिया है तथा समाज के ताने बाने में, जीवन के अनेक पहलूओं में भारी परिवर्तन लाये हैं. ये परिवर्तन सकारात्मक भी है और नकारात्मक भी.

आज की ज़्यादातर फिल्मों में उच्च स्तरीय रहन-सहन, अवैध विवाहेतर संबंध, हिंसा आदि दिखाया जाता है. उनमें प्रतिस्पर्धा है कि कौन कितने बुरे और अनुचित तरीके से परोस सकता है. इनका मकसद केवल टी आर पी की दर को ऊपर उठाना है ताकि अधिक से अधिक धन कमाया जा सके. फिल्मों और टी वी के सेक्स और हिंसा के प्रदर्शन के मिले जुले असर अब बहुत चिंताजनक बनते जा रहे हैं. युवा पीढ़ी में हिंसा की प्रवृत्ति में वृद्धि के लिए फिल्मों में सेक्स और हिंसा का ज्यादा प्रदर्शन जिम्मेदार है. निरंतर हिंसा, हत्या, उत्पीड़न आदि घटनाओं को देखने से मनुष्य के मन में जो कोमल भावनाएं है वे धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही हैं. वह हिंसा को दैनिक जीवन के एक ऐसे हिस्से के रूप में समझ लेता है, जिसके लिए संवेदनशीलता की कोई खास आवश्यकता नहीं होती है. जब बहुत से लोग ऐसा सोचने लगते हैं तो समाज में हिंसक शक्तियाँ और प्रवृत्तियों के हावी होने के अनुकूल मौके पैदा होते हैं. बहुत तेजी से या लापरवाही से वाहन चलाना, भीड़-भरी सड़कों पर या अन्य खतरनाक रास्तों पर तरह-तरह के जोखिम लेना जैसी बातों को प्रायः टी वी एवं सिनेमा में इतने आकर्षक ढंग से पेश किया जाता है कि कई किशोर/युवा भी ऐसे ही जोखिम बिना वजह उठाना शुरू कर देते हैं. जिसका खामियाजा खुद उन्हें या दूसरों को उठाना पड़ता है. इमारतों से छलांग लगाना, खेल-खेल में साथी को चोट पहुँचाने से आगे बढ़कर युवा अपराध और गंभीर अपराध करना सीख गए हैं. फिल्में उनकी प्रेरणा बनती जा रही हैं, जिनसे वे अपराध करने के नए-नए तरीके सीखते हैं. इसका उदाहरण हाल ही में इंदौर में सामने आया. जिसमें युवाओं ने फिल्में देख कर गैंग बना डाला और कई वारदातों को अंजाम दिया. हालांकि वे सलाखों के पीछे पहुँच गए, लेकिन समाज के सामने सैकड़ों सवाल और चिंताएं खड़ी कर गए हैं.

सिनेमा और टी वी की एक बड़ी समस्या यह है कि प्रायः महिलाओं को सेक्स प्रतीक के रूप में चित्रित किया जाता है. महिलाओं की समाज में बहुपक्षीय सार्थक भूमिका को सही ढंग से दिखानेवाली कुछ फिल्में बनी हैं, पर अधिकतर व्यावसायिक मसाला फिल्मों में महिलाओं को सेक्स प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है. उनके तरह-तरह के हाव भाव, वेश भूषा, अंग प्रदर्शन पर फिल्म निर्माताओं या निर्देशकों का ध्यान केन्द्रित रहता है. महिलाओं को एक के बाद अनेक फिल्मों में सेक्स के प्रतीक के रूप में दिखाने का असर यह होता है कि महिलाओं के प्रति स्वस्थ मित्रता का भाव विकसित होने के बजाय नई पीढ़ी में एक नकारात्मक भाव पैदा होता है. इनकी अभिव्यक्ति छेड़ छाड़ और तरह-तरह की अश्लील हरकतों के रूप में देखने को मिलती है. कई बार देखा गया है कि छेड़छाड़ की जो शैली किसी हिट फिल्म में देखी गई होती है, वही सड़कों व गलियों में भी दोहराई जाती है. बीते दिनों में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं, जिसमें लड़कों ने पहले छेड़छाड़ की ओर मनोनुकुल उत्तर न मिलने पर उसकी हत्या कर दी या उनके साथ हिंसक वारदातें की, लूट और डकैती या जेल से भागने और अनेक वारदातें फिल्मों से प्रेरणा लेकर घटती हैं.

सभी समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि फिल्मों और टी वी में दिखाई जाने वाली नकारात्मक बातों का समाज पर गहन और व्यापक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है. ऐसे अनेक अपराधियों ने भी बताया है कि उन्हें अपराध करने की प्रेरणा फलां फलां फिल्म या टी वी के दृश्य से मिली है. पैसे कमाने की होड़ में ये लोग समाज को जहर पिला रहे हैं. फिल्मों का समाज पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ता है, जिसका फ़िल्मकारों को उचित ध्यान रखते हुए ऐसी फिल्मों का निर्माण करना चाहिए जो शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ मनोरंजक भी हों. फिल्म निर्माताओं की भी समाज के प्रति बड़ी ज़िम्मेदारी होती है क्योंकि वो भी समाज का एक हिस्सा होते हैं. फिल्मों को सिर्फ धनार्जन का जरिया मात्र ही नहीं होना चाहिए.

सरकार को चाहिए कि वो अच्छी एवं शिक्षाप्रद फिल्मों को कर मुक्त रखे जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग फिल्म देखें. आम जनता को भी अच्छी और बुरी फिल्मों में फर्क करके फिल्में देखनी चाहिए. जिसके फलस्वरूप अच्छी फिल्में धन अर्जन कर पाएगी तथा फिल्म निर्माता इस प्रकार की फिल्में बनाने के लिए प्रेरित होंगे, जिससे समाज में अच्छे विचार संचारित होगें एवं समाज में हिंसा कम हो जाएगी.

रितु
क्षे.का., जबलपुर

फिल्म जगत एवं दृष्टिहीन वर्ग

'वो क्या है? एक मंदिर है.
मंदिर में? एक मूरत है.
ये मूरत कैसी होती है?
तेरी सूरत जैसी होती है.'

संभवतः इस गीत की पंक्ति ने आपको कुछ याद दिलाया होगा. वह क्या है?

फिल्मों ने विकलांगों के जीवन को मुख्य धारा से जोड़ने एवं इस वर्ग से जुड़ी समस्याओं को हर वर्ग तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है. हालांकि फिल्मों में विकलांग जन को अधिक स्थान तो प्रदान नहीं किया, किंतु जो किया है वह बहुत महत्वपूर्ण है. यदि हम नेत्रहीन व्यक्तियों के जीवन चित्रण की बात करें तो पाते हैं कि समय के साथ फिल्मों में इस वर्ग के प्रति सोच एवं समझ में बदलाव आया है. आइये, हम यहाँ कुछ ऐसी फिल्मों की चर्चा करें जिन्होंने दृष्टिहीन वर्ग का न केवल फिल्मांकन किया है, बल्कि उनके प्रति समाज के दृष्टिकोण में भी व्यापक बदलाव किया है.

साठ के दशक में प्रसाद प्रोडक्शन के बैनर तले एक फिल्म आई थी **दोस्ती**. इस फिल्म में दृष्टिबाधित के संघर्ष, साहस, ईमानदारी एवं स्वाभिमान को चित्रित करने का प्रयास किया गया है. फिल्म में दृष्टिबाधित की भूमिका अभिनेता सुधीर कुमार ने निभाई थी. उनके अभिनय से दृष्टिहीनता की सही कहानी प्रस्तुत हुई है. फिर भी इस फिल्म में दृष्टिबाधित जो कि नायक है को भिक्षावृत्ति ही करते दिखाया गया है. उनका साथी अस्थि विकलांग है जो कि पढ़ाई करता है और अपने मित्र की शिक्षा के लिए नायक उसे त्यागना स्वीकार कर लेता है. यह दृष्टिहीन का त्याग और समर्पण ही है, जो फिल्म को नयी उंचाई देता है.

सत्तर के दशक में शक्ति सावन्त द्वारा निर्मित फिल्म **अनुराग** ने भी दृष्टिबाधित महिलाओं के जीवन पर प्रकाश तो डाला, पर यह फिल्म भी दृष्टिहीनता के साथ जीवन जीना नहीं सिखा सकी. इस फिल्म की दृष्टिहीन नायिका अंत में दृष्टिवान हो जाती है. इसी दशक में आई एक अन्य फिल्म **सुनयना** थी, जिसमें दृष्टिबाधित युवती को कदम गिनकर चलते हुए प्रदर्शित किया गया है. इससे आज भी हमारे समाज में यह छवि बैठ गई है कि दृष्टिबाधितजन कदम गिनकर चलते हैं. हालाकि यह मान्यता यथार्थ से बहुत दूर है क्योंकि हर स्थान पर कदमों को गिनकर चलना न तो संभव है और न ही व्यावहारिक.

एक फिल्म **उधार का सिंदूर** आई जो कि दृष्टिबाधित जीवन की विडंबना को प्रदर्शित करती है, साथ ही इस नकारात्मक छवि को भी प्रस्तुत कर देती है कि दृष्टिबाधित व्यक्ति को त्याग, बलिदान एवं आत्मघात तक करना पड़ सकता है. इस तरह इस फिल्म ने नेत्रहीन व्यक्ति को एक बेचारे के रुप में प्रदर्शित किया है.

सकारात्मक सोच एवं स्वाभिमान से भरपूर, नसीरुद्दीन शाह द्वारा अभिनीत फिल्म, **'स्पर्श'** की चर्चा करना चाहेंगे. इस फिल्म ने बिना किसी अतिशयोक्ति के दृष्टिबाधित के जीवन को उकेरा है. इस फिल्म की तैयारी के लिए श्री शाह एक अंध विद्यालय में, वहाँ के प्राध्यापक की अनुमति लेकर वहाँ पर कुछ दिन रुके थे. नसीरुद्दीन शाह का लाजवाब अभिनय देखकर कोई नहीं कह सकता कि इस फिल्म का नायक कोई दृष्टिवान व्यक्ति है. इस फिल्म में एक दृष्टिबाधित शिक्षक की इच्छाएं, आकांक्षाएं, स्वाभिमान, उसकी हताशा, उसका प्रेम, त्याग, समाज का उसके प्रति व्यवहार, आदि सब कुछ प्रदर्शित किया गया है. फिल्म में सब कुछ सामान्य है, सामान्य गति से ही चलता है. यह फिल्म दृष्टिबाधित जन के जीवन को इस तरह प्रदर्शित करती है जैसे उनकी दुनिया कुछ अलग है. अंध विद्यालय पर ही इसकी कहानी केन्द्रित होकर रह जाती है. जो भी हो, **सई परांजपे** ने इस फिल्म के माध्यम से भारतीय फिल्म निर्माताओं को यह संदेश तो अवश्य ही दिया है कि हमारे देश में भी विकलांगता सकारात्मक फिल्म निर्माण का विषय हो सकती है.

दर्शकों को हँसाने के लिए कादर खान ने **बोल राधा बोल** जैसी फिल्मों में दृष्टिबाधित व्यक्ति जिसे रतौंधी की बीमारी है, का अभिनय किया है. इस तरह के अभिनय में कादर खान स्वयं हास्यास्पद लगे हैं.

लोगों के मनोरंजन हेतु सब कुछ चलता है पर वास्तविकता यह है कि इसे स्वस्थ मनोरंजन नहीं कहा जा सकता.

संजय लीला भंसाली द्वारा निर्मित फिल्म **'ब्लैक'** ने भी बहुत चर्चा बटोरी. हेलन केलर की कहानी से प्रेरित इस फिल्म में बहु विकलांग के जीवन को प्रदर्शित किया गया है. मूक-बधिर एवं दृष्टिबाधित होते हुए भी इस फिल्म की नायिका लंबे संघर्ष के बाद अपनी स्नातक की डिग्री प्राप्त करती है. विकलांग व्यक्ति के प्रति उसके माता-पिता का स्नेह एवं भाई-बहन की ईर्ष्या को भी इस फिल्म ने बखूबी प्रदर्शित किया है. अभिनेत्री रानी मुखर्जी ने इस फिल्म में अच्छा अभिनय किया है, फिर भी उनके चलने का स्टाइल बनावटी है. चलने संबंधी जो त्रुटियाँ उन्होंने की है, उससे लगता है कि विकलांगता को इस तरह के अभिनय द्वारा बताने का प्रयास किया जा रहा है. साथ ही ऐसा भी लगता है मानो देखने व सुनने की कमी अन्य अंगों में भी विकृति पैदा कर देती हो. अर्जुन रामपाल, अक्षय कुमार, परेश रावल, सुष्मिता सेन तथा अमिताभ बच्चन द्वारा अभिनित फिल्म **आँखें** दृष्टिबाधितों के जीवन की एक अनूठी छवि प्रस्तुत करती है. फिल्म में भरपूर कॉमेडी है. साथ ही यह भी बताया गया है कि यदि प्रशिक्षण दिया जाए तो दृष्टिबाधित व्यक्ति किसी भी काम को अंजाम दे सकता है. चाहे वह काम बैंक डकैती जैसा दुस्साहस भरा ही क्यों न हो. फिल्म जिस सफाई से दृष्टिबाधितों को बैंक की लूट करते हुए दिखाया गया है उससे लगता है कि कोई व्यक्ति पहले मनुष्य है उसके बाद ही वह विकलांग है अथवा नहीं है. विकलांगता किसी व्यक्ति की इच्छाओं को दबा नहीं सकती.

2005 में प्रदर्शित काजोल एवं आमिर खान अभिनीत फिल्म **फना** में एक दृष्टिबाधित युवती को अपने प्रेमी के प्रति खुला प्रणय निवेदन करते एवं उसके साथ एक रात बिताने का आग्रह करते दिखाया है. यहाँ भी किसी व्यक्ति का पहले मानव होना ही व्यक्त हुआ है. प्रेम पाने का अधिकार दृष्टिहीन को भी उतना ही है जितना किसी सामान्य मनुष्य को. फिल्म का नायक एक आतंकवादी है जिसकी जानकारी नायिका को नहीं है. नायक नायिका का उपचार करवा देता है और उसकी दृष्टि लौट आती है. उसके ठीक होने पर नायक उससे नहीं मिल पाता. बहुत लंबे समय के पश्चात नायक नायिका से मिलता है. तब नायिका उसे नहीं पहचान पाती है. छुपने की गरज से वह नायिका के घर में रहता है. स्पर्श के एहसास से वह नायक को पहचान जाती है. इस तरह फिल्म में नायिका द्वारा दृष्टिहीनता के दौरान प्राप्त की गई अनुभूतियों को बहुत ठोस बताया गया है.

आमिर खान द्वारा निर्मित एवं अभिनित फिल्म **गजनी** में नायिका को एक दृष्टिबाधित व्यक्ति को सड़क पार करवाते हुए दिखाया गया है. नायिका सड़क पर जब दृष्टिबाधित व्यक्ति का हाथ पकड़कर चलती है तो चारों ओर के दृश्यों का वर्णन भी करती जाती है. सहानुभूति एवं समानुभूति उत्पन्न करने के लिए ऐसे कुछ दृश्य भी गहरी छाप छोड़ जाते हैं. उक्त फिल्म का नायक जब इस सहयोगी रवैये को देखता है तो वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता.

2011 में आई हॉलीवुड फिल्म **शिप इन द थीसिस** में एक दृष्टिबाधित युवती को उच्च तकनीकी का उपयोग कर फोटोग्राफी करते हुए दिखाया गया है. फिल्म की नायिका इसलिए फोटोग्राफर नहीं बनती कि उसे औरों को जताना है कि वह ऐसा कर सकती है, बल्कि वह इसलिए फोटोग्राफी करती है क्योंकि इसमें उसकी रुचि है.

हाल ही में आई फिल्म **काबिल** ने भी बहुत से विचारकों का ध्यान आकर्षित किया है. फिल्म में नायक एवं नायिका जो कि दोनों ही दृष्टिबाधित हैं को साधारण तरीके से जीवन जीते हुए तथा जैसे समाज की मुख्य धारा से जुड़े हुए व्यक्ति की तरह अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं, ठीक वैसे ही बताया गया है. नायिका को अपराधी तत्वों की हवस का शिकार बनना पड़ता है और परिणामतः नायक प्रतिशोध लेता है. कहानी में से यदि दृष्टिहीनता को हटा दें तो यह बहुत सी हिन्दी फिल्मों की कहानी की ही तरह है. फिल्म में नायक द्वारा लिये गये प्रतिशोध का तरीका आज के हिसाब से तार्किक नहीं बैठता है. हालांकि फिल्म का नायक मिमिक्री एवं डबिंग द्वारा अपना जीवन यापन करता है. रोजगार हेतु यह एक अच्छा आयाम हो सकता है, किंतु फिर भी इस फिल्म में दृष्टिबाधित नायक को आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते नहीं बताया गया है. यदि ऐसा किया जाता तो जागरूकता एवं जानकारी के लिहाज से अच्छा होता. फिर भी इस फिल्म द्वारा लोगों का नजरिया अवश्य बदला होगा.

इस तरह से हमारी फिल्मों ने दृष्टिबाधितों के जीवन को अलग-अलग दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है. समय के साथ दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है और हम ऐसी आशा करते हैं कि आने वाले समय में दृष्टिबाधितों के बेहतर सामाजिक समायोजन में फिल्में महति भूमिका अदा करेंगी.

अर्पित जैन
स्टा.प्र.के. भोपाल

राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार

देश के स्वतंत्र होने के पश्चात कला, संस्कृति, सिनेमा और साहित्य आदि को प्रोत्साहित करने और श्रेष्ठ कार्य करने वालों को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से समितियों का गठन किया गया था. उन्हीं में से सन् 1949 में गठित एक समिति ने शिक्षा, संस्कृति मूल्यों को लेकर बनी सर्वोत्तम फिल्मों को प्रति वर्ष राजकीय पुरस्कार से पुरस्कृत करने की सिफारिश की थी जिससे उच्च तकनीक की अच्छी फिल्मों के निर्माण को प्रोत्साहन मिल सके. सूचना प्रसारण मंत्रालय द्वारा इन सिफारिशों को साकार करने के लिए सन् 1953 में प्रदर्शित फिल्मों का मूल्यांकन करते हुए वर्ष 1954 में वर्ष 1953 की सर्वोत्तम फिल्मों को पुरस्कार दिए गए. इस तरह देश में राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कारों की शुरुआत सन् 1954 में हुई थी. उस समय देश के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद थे जबकि सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री बी.वी. केसकर थे. गौरतलब है कि इन राष्ट्रीय पुरस्कारों को तब राजकीय फिल्म पुरस्कार कहा जाता था. इस प्रथम फिल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का प्रथम स्वर्ण पदक मराठी फिल्म श्यामची आई को मिला था और सर्वश्रेष्ठ वृत्त चित्र का स्वर्ण पदक महाबलीपुरम को दिया गया था.

इसके पश्चात देश में प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार का आयोजन होता रहा है. यह फ़िल्मों के क्षेत्र में दिये जाने वाला भारत का सबसे बड़ा फ़िल्मी पुरस्कार है. यह पुरस्कार फ़ीचर तथा गैर फ़ीचर दोनों तरह की फ़िल्मों के लिए प्रदान किया जाता है. फिल्म के क्षेत्र में यह पुरस्कार राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण पुरस्कार माना जाता है.

राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कारों का उद्देश्य सुरुचिपूर्ण और तकनीकी तौर पर उत्कृष्ट तथा सामाजिक तौर पर प्रासंगिक फ़िल्मों के निर्माण को बढ़ावा देकर सिनेमा के माध्यम से देश के विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों के प्रति समझ और सम्मान के प्रति योगदान देना और इस प्रकार राष्ट्र की एकता और अखंडता को बढ़ावा देना है.
इसके अंतर्गत निम्नानुसार पुरस्कार दिए जाते हैं–

1. **दादा साहेब फाल्के पुरस्कार**

विदित हो कि फिल्मों के क्षेत्र में अपने जीवन काल में महत्वपूर्ण योगदान हेतु यह पुरस्कार प्रदान किया जाता है. भारत में फिल्मों के पितामह कहे जाने वाले धुंडीराज गोविन्द फाल्के का जब 1969 में जन्म शताब्दी वर्ष आया तब भारत सरकार ने उनकी स्मृति में उन्हें सम्मान देने के लिए सिनेमा के अत्यंत विशिष्ट साधकों को दादा साहेब फाल्के पुरस्कार देने का निर्णय लिया.

फीचर फिल्म खंड

स्वर्ण कमल – फिल्म निर्देशन, मनोरंजन से भरपूर सबसे लोकप्रिय फ़िल्म, निर्देशक की प्रथम फ़िल्म, बाल फिल्म, एनिमेटेड फ़िल्म के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ को स्वर्ण कमल दिया जाता है.

रजत कमल – रजत कमल के तहत अभिनेता पुरस्कार, अभिनेत्री पुरस्कार, सहायक अभिनेता पुरस्कार, सहायक अभिनेत्री पुरस्कार, बाल कलाकार, संगीत निर्देशन, पार्श्वगायक, पार्श्वगायिका, गीत, कला निर्देशन, ऑडियोग्राफी, नृत्य संयोजन, छायांकन, पोशाक रचना, सम्पादन, मेकअप, पटकथा, विशेष प्रभाव, जूरी पुरस्कार / उल्लेख, पर्यावरण संरक्षण पर फ़िल्म, परिवार कल्याण पर फ़िल्म, राष्ट्रीय एकता पर फ़िल्म, अन्य सामाजिक मुद्दों पर फ़िल्म आदि क्षेत्र आते हैं.

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट प्रत्येक भाषा में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म

असमिया, उर्दू, ओड़िया, बांग्ला, बोडो, डोगरी, कश्मीरी, कन्नड़, कोंकणी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, पंजाबी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, संस्कृत, हिन्दी जैसी कुल 18 भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ फिल्मों को पुरस्कृत किया जाता है.

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में निर्दिष्ट भाषाओं के अलावा अन्य भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म–

अंग्रेजी, कोडावा, भोजपुरी, खासी, तुलु जैसी अन्य कुल पाँच भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ फिल्मों को भी स्वर्णकमल से पुरस्कृत किया जाता है.

गैर–फीचर फिल्म खंड

स्वर्ण कमल

इस श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ गैर–फीचर फ़िल्म तथा सर्वश्रेष्ठ गैर–फीचर फ़िल्म निर्देशन को स्वर्णकमल देकर पुरस्कृत किया जाता है.

रजत कमल

विशेष ज्यूरी पुरस्कार, श्रेष्ठ ध्वनि चित्रण इन दो श्रेणियों में रजत कमल से पुरस्कृत किया जाता है.

इसके अलावा अन्य गैर–फीचर फिल्म निम्नलिखित श्रेणियों में सर्वश्रेष्ठ' को पुरस्कृत किया जाता है.

कृषि फ़िल्म, गैर–फीचर एनिमेशन फ़िल्म, नृविज्ञान / नृवंशविज्ञान फ़िल्म, कला / सांस्कृतिक फ़िल्म, जीवनचरित्र फ़िल्म, शैक्षिक / प्रेरक / निर्देशात्मक फ़िल्म, पर्यावरण / संरक्षण फ़िल्म, अन्वेषण / साहसिक फ़िल्म, परिवार कल्याण पर फ़िल्म, ऐतिहासिक पुनर्निर्माण / संकलन फ़िल्म, खोजी फ़िल्म, प्रोमोशनल फ़िल्म, वैज्ञानिक फ़िल्म, लघु फ़िल्म, सामाजिक मुद्दों आदि विषयों पर बनी फिल्मों को रजत कमल देकर पुरस्कृत किया जाता है.

सिनेमा पर श्रेष्ठ लेखन

स्वर्ण कमल

सिनेमा पर सर्वश्रेष्ठ पुस्तक, सर्वश्रेष्ठ फिल्म समालोचन को भी स्वर्णकमल से पुरस्कृत किया जाता है.

इस प्रकार हम देखा जाए तो राष्ट्रीय पुरस्कार फ़िल्म उद्योग का वह पुरस्कार है जिस पर किसी भी कलाकार को गर्व होता है. स्वर्ण कमल एवं रजत कमल श्रेणी के पुरस्कार फिल्मी जगत के प्रत्येक क्षेत्र में कलाकारों, लेखकों, संगीतकारों एवं गीतकारों को नयी पहचान देते हैं.

डॉ. वी. के. पाण्डेय
क्षे.का., पटना

रामायण

के 'राम' अरुण गोविल - हमारे खाता धारक

हमारे देश के वे सभी लोग जो दूरदर्शन के साथ वयस्क और फिर प्रौढ़ हुये हैं उन्हें 1982 में रंगीन टीवी आने के बाद के वो दिन ज़रूर याद होंगे जब दूरदर्शन शहरों से निकलकर देश के कोने-कोने तक पहुंचा था. ये वही दिन थे जब दूरदर्शन देखने के लिये सड़कों पर सन्नाटा हुआ करता था, जिन घरों में रंगीन टीवी थी वहां मजमा लगता था. घरों में बिजली आने और जाने का समय दूरदर्शन तय किया करता था.

इस ज़माने में छोटे पर्दे पर जो धारावाहिक सबसे ज़्यादा मशहूर हुये उनमें से एक था रामानंद सागर का रामायण. इस धारावाहिक में राम का क़िरदार निभाया श्री अरुण गोविल ने, जो उत्तर प्रदेश के मेरठ में मुंबई आए तो थे कारोबार करने लेकिन रूपहले पर्दे की चमक ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया. यूनियन सृजन के फिल्म विशेषांक के लिये हमारे संवाददाता आशीष गुप्ता ने श्री अरुण गोविल से विशेष बातचीत की है.

मुंबई के सबसे घने इलाकों में से एक माना जाता है, अंधेरी. मुंबई के इसी उपनगर में वर्सोवा इलाक़े के एक भव्य अपार्टमेंट में रहते हैं बीते ज़माने के सुप्रसिद्ध अभिनेता और हम सब के ज़ेहन में राम की छवि के रूप में विद्यमान श्री अरुण गोविल. श्री अरुण गोविल हमारे लिये सिर्फ़ एक अभिनेता नहीं थे जिनसे हमें बातचीत करनी थी. श्री गोविल हमारे बैंक की विले पारले पश्चिम शाखा के सम्मानित ग्राहक भी हैं, इसलिये उनसे मिलते हुये बहुत झिझक नहीं हुई, क्योंकि एक ग्राहक होने के नाते उनसे आत्मीयता सी थी. जब हम उनके दिये समय पर उनके घर पहुंचे तो वो ख़ुद दरवाज़े पर आए, दुआ-सलाम हुई और वो हमें अपने ड्रॉइंग रूम की तरफ़ ले गए. वहां बैठकर हमारी 1 घंटे से ज़्यादा बातचीत हुई, इस दौरान उन्होंने फ़िल्मी दुनिया से जुड़े तमाम मुद्दों पर अपने सफ़र के बारे में हमसे बातचीत की जिसके संपादित अंश आपके समक्ष प्रस्तुत हैं-

प्रश्न- सर आपने बहुत सी हिंदी, तमिल, बंगाली, गुजराती और उड़िया फिल्मों में अभिनय किया है, लेकिन फिर भी लोग आपको रामानंद सागर द्वारा निर्देशित रामायण धारावाहिक के राम के रूप में ही याद रखते हैं. लेकिन इतने क़िरदारों में से आप किस क़िरदार को सबसे ज़्यादा पसंद करते हैं?

उत्तर- एक अभिनेता के लिये तो उसके सभी क़िरदार बराबर होते हैं. सबमें वो पूरी मेहनत और लगन के साथ अभिनय करता है लेकिन फिर भी कुछ क़िरदार ऐसे होते हैं जो जिनमें बहुत सोचना समझना नहीं पड़ता और ये होते चले जाते हैं. जबकि कुछ क़िरदार ऐसे होते हैं जिनका अभिनय करने के लिये आपको बहुत सोच समझकर काम करना पड़ता है. रामायण में राम का क़िरदार ऐसा ही था जिसके लिये बहुत मेहनत करनी पड़ी. आप कह सकते हैं कि ये क़िरदार मुझे सबसे ज़्यादा पसंद था.

प्रश्न- सर, राम का क़िरदार आपको सबसे ज़्यादा पसंद क्यों है?

उत्तर- क्योंकि यह क़िरदार बहुत मुश्किल था. यहां आपको एक ऐसे भगवान का किरदार अदा करना था जिन्होंने अपना जीवन मनुष्य की तरह जिया. यानि क़िरदार को ऐसा होना चाहिये जो आम आदमी से अलग दिखे यानि भगवान जैसा दिखे लेकिन व्यवहार आम आदमी की तरह करे. ऐसे में इतनी सारी चीज़ों को साधते हुये किसी क़िरदार को निभाना बड़ा मुश्किल होता है.

प्रश्न- मैंने कहीं सुना था कि इस क़िरदार को निभाने के कारण आपको अपने व्यक्तिगत जीवन में भी बहुत से बदलाव करने पड़े थे.

उत्तर- लोगों को सुनने में थोड़ा अजीब लगेगा, लेकिन मैं रामायण धारावाहिक के वक़्त चेन स्मोकर था, कहीं बीच में जाकर मैंने ये आदत छोड़ी. दरअसल हुआ यूं कि मैं एक तमिल-तेलुगु द्विभाषी फिल्म कर रहा था. शूटिंग चेन्नई में चल रही थी, लंच के वक़्त मैं कोने में जाकर सिगरेट पी रहा था, तभी एक दक्षिण भारतीय आदमी मेरी तरफ़ आया और मुझे बड़ी ज़ोर की डांट लगाई. उसने मुझसे कहा कि हम तुम्हें भगवान मानते हैं और तुम ऐसी हरक़ते करते हो. कुल मिलाकर उसकी भावनाओं से मैं बहुत आहत हुआ और मैंने तभी तय किया कि अगर मैं ऐसा क़िरदार निभा रहा हूं तो मुझे लोगों की भावनाओं का सम्मान करना चाहिये.

प्रश्न- इन दिनों आप क्या करते हैं?

उत्तर- आज के बच्चों की भाषा में कहें तो....आई एम चिलिंग. पढ़ने का शौक़ था लेकिन इन दिनों वो भी ज़्यादा नहीं हो पाता.

प्रश्न- यदि आपको आज के धारावाहिकों पर टिप्पणी करनी हो तो आप क्या कहेंगे?

उत्तर- आज के धारावाहिकों में हर चीज़ बड़ी लाउड हो गई है. पात्र एकदम काल्पनिक लगते हैं और धारावाहिक अब महिलाओं के इर्द गिर्द ही घूमते हैं और सबसे बड़ी बात ये कि इनमें से ज़्यादातर पात्र नकारात्मक होते हैं. इन पात्रों में दर्शक कई बार अपने आप को भी खोज लेता है क्योंकि हमारे समाज से भी सकारात्मकता ग़ायब होती जा रही है.

प्रश्न- धारावाहिकों के विपरित क्या फिल्में अब ज़्यादा रियल हो रही हैं?

उत्तर- हां, ये सच है, आप का सिनेमा काफ़ी ईमानदारी से बनाया जा रहा है, फिल्में अब ज़्यादा रियल हो चुकी हैं. अभिनय अब फिल्मों और धारावाहिकों दोनों में काफ़ी अच्छा हो गया है, जो पहले नहीं था.

प्रश्न- आपको फिल्मों और धारावाहिकों में से ज़्यादा सशक्त माध्यम क्या लगता है?

उत्तर- देखिये, ये निर्भर करता है कि ये आप किस नज़रिये से देख रहे हैं. यदि आपको कोई बात फटाफट हर घर में पहुंचानी है तो टीवी ज़्यादा सशक्त माध्यम है. जैसे विज्ञापन के लिये टीवी से बेहतर सिनेमा नहीं है, लेकिन यदि आपको अपने क्रिएशन का प्रभाव छोड़ना है तो निस्संदेह सिनेमा टीवी से कोसों आगे है.

प्रश्न- सर, आप यूनियन बैंक की विले पारले (पश्चिम) शाखा के ग्राहक भी है. बैंक की सेवाओं पर आपकी टिप्पणी.

उत्तर- मुझे बहुत से दूसरे बैंकों से प्रस्ताव आते रहते हैं, मेरा बेटा भी कहता है कि बहुत से ऐसे बैंक हैं जो बहुत अच्छी सेवा देते हैं, लेकिन मुझे वहां ह्यूमन टच नहीं मिलता इसलिये मैं यूनियन बैंक ही जाता हूं. क्योंकि यूनियन बैंक की शाखा में मैं जब भी जाता हूं तो मुझे वहां अपनापन लगता है.

धन्यवाद सर!

आशीष गुप्ता
क्षे.का., मुंबई (प.)

अभिनय फिल्मी पर्दे पर- पर्दे के पीछे

यह सम्पूर्ण चराचर जगत सर्वशक्तिमान द्वारा सृजित सजीव रंगमंच है जिस पर वह अपनी कला का प्रदर्शन करता है और संसार में विद्यमान समस्त प्राणी उसी के अंश हैं, अर्थात ईश्वर की कला का अंश उनमें भी विद्यमान है, जिससे वे अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करते रहते हैं. सर्वशक्तिमान की समस्त रचनाओं में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ रचना है अथवा यह भी कह सकते हैं कि वह स्वयं सर्वशक्तिमान का स्वरूप है और अभिनय का गुण उसमें नैसर्गिक रूप से विद्यमान है. जब बच्चे का पदार्पण इस लोक में होता है, तो वह अपने हाथ-पाँव हिला कर ही अपने जीवित होने का प्रमाण देता है, यद्यपि हम जिस अभिनय की चर्चा कर रहे हैं वह इस नैसर्गिक चेष्टा से सर्वथा भिन्न है.

अभिनय का अर्थ है- स्वांग करना अथवा मनोभावों को व्यक्त करने के लिए आंगिक चेष्टाएं और उनका कलात्मक प्रदर्शन करना. किसी कथा या कहानी को अपने आंगिक, सात्विक, वाचिक और आहार्य चेष्टाओं द्वारा सजीव रूप में इस प्रकार प्रदर्शित करना कि वह वास्तविक प्रतीत होने लगे अर्थात रस का पूर्ण परिपाक हो जाए, अभिनय कहलाता है.आचार्य भारतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अभिनय शब्द की निरुक्ति करते हुए कहा है- 'अभिनय' शब्द 'णी' धातु में अभी उपसर्ग लगाकर बना है. अभिनय का उद्देश्य है किसी पद या शब्द के भाव को अर्थ तक पहुंचा देना, अर्थात दर्शकों या सामाजिकों के हृदय में भाव या अर्थ से अभिभूत करना. कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण में कहा है-''भवेदाभीनयो अवस्थाअनुकारह,'' अर्थात अवस्था का अनुकरण ही अभिनय कहलाता है.

वास्तव में अभिनय एक ऐसी कला है, जिसमें अव्यक्त भावनाओं को भी मूर्त रूप प्राप्त हो जाता है. उदाहरणार्थ- हम फिल्मों में खलनायक की भूमिका का निर्वाह करने वाले पात्र को क्रूर और निर्दयी समझ लेते हैं, जबकि वास्तविकता इससे पूर्णतः भिन्न भी हो सकती है अर्थात जो अभिनय द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है, जरूरी नहीं कि वास्तविकता में वह इंसान वैसा हो. आज के परिदृश्य में अभिनय का कलेवर पूर्णतः बादल चुका है या कह सकते हैं कि निरंतर बदल रहा है. इस परिवर्तनशील युग में अभिनय युवाओं की प्रायः पहली पसंद बन चुका है. युवा अभिनय जगत में प्रवेश करने के लिए अत्यधिक लालायित रहते हैं, क्योंकि यही वह क्षेत्र है जहाँ वे स्वप्न सी प्रतीत होने वाली जिंदगी जीने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं. अभिनय जगत को इतना आकर्षक बनाने में कई अन्य संस्थाओं के साथ-साथ बॉलीवुड का भी महत्वपूर्ण योगदान है. यहाँ एक बार सिल्वर स्क्रीन पर अभिनय करने का अवसर प्राप्त करते ही अभिनेता- अभिनेत्रियाँ अपनी लगन और कौशल के दम पर रातों-रात करोड़ों दिलों की धड़कन बन जाते हैं तथा जो अभिनेता-अभिनेत्रियाँ एक सामान्य सा जीवन व्यतीत कर रही होती हैं. वे अचानक पाँच सितारा व सात सितारा होटलों में ऐशो-आराम के जीवन पर आ जाते हैं. देखते-देखते ही वे अकूत धन संपदा के मालिक बन जाते हैं. अर्थात इस प्रोफ़ेशन में कम समय में ही संपदा और प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं.यही कारण है कि आज का प्रत्येक युवा अभिनय जगत में जाकर अपनी एक अलग और आधुनिक पहचान बनाना चाहता है और यह सम्पूर्ण चमत्कार पर्दे पर कुशलतापूर्वक अभिनय का परिणाम है.फलतः फिल्मी पर्दे पर अभिनय द्वारा अभिनेता-अभिनेत्रियाँ लंबी गाडियाँ, ऊंचे बंगले, महंगे कपड़े, नौकर-चाकर आदि भौतिक जीवन की समस्त सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने में सफल होते हैं. लेकिन यह कहानी उन सफलता प्राप्त कुछेक सौभाग्यशाली लोगों की है अन्यथा अधिकतर लोग इस आकर्षण के तहत यहाँ आकर गुमनामी की अंधेरी गर्त में कब कहाँ गायब हो जाते हैं, इसका पता भी नहीं चलता और यह संख्या ज्यादा है.

कैमरे की चकाचौंध, चाहने वालों की भीड़, लंबी गाड़ियों और पैरों के नीचे लाल कालीन, शानो-शौकत से भरपूर फिल्मी दुनिया की सच्चाई यही है या कुछ और ? यह सत्य है कि ये सारी चीजें फिल्मी पर्दे पर दिखाई देती हैं परंतु पर्दे के पीछे के अभिनय की सच्चाई इससे कुछ भिन्न है. फिल्मी पर्दे पर दुनिया जितनी खूबसूरत दिखती है, पर्दे के पीछे की दुनिया अर्थात वास्तविक जीवन की दुनिया, जो कि कई सवाल खड़े करती है वास्तव में भिन्न है. यदि पर्दे के पीछे की दुनिया इतनी खूबसूरत होती तो अभिनेता-अभिनेत्रियाँ असमय काल के गाल में समाने के लिए मजबूर नहीं होते. उदाहरणार्थ 19 साल की उम्र में दिव्या भारती की आत्महत्या, मॉडल नफीसा जोसेफ़, विवेका बाबाजी, जिया खान आदि की आत्महत्याएं कई सवाल खड़े करती हैं, साथ में हत्याओं/धमकियों का सिलसिला भी चलता है. गुलशन कुमार की हत्या ने तो इस क्षेत्र पर बहुत बड़ा सवालिया निशान लगाया था.

ये तो वे नाम हैं जो मीडिया की नजरों में हैं.कई नाम तो ऐसे भी होते हैं जिन्हें कवरेज देना भी मीडिया जरूरी नहीं समझती. इन हादसों का कारण फिल्मी हस्तियाँ अवसाद बताते हैं. प्रथम दृष्ट्या देखने पर यह लगता है कि इतनी आरामदायक जीवन शैली वालों को क्या अवसाद हो सकता है ? परंतु थोड़ा आंतरिक खोजबीन करने पर मालूम होता है कि वास्तव में आम आदमी के मुक़ाबले फिल्मी सितारों पर कई गुना ज्यादा दबाव होता है. फिल्मी सितारे हों या आम आदमी, भीतर से सभी एक जैसे ही होते हैं. उनके पास काम हो या न हो, लोगों की उम्मीद यही होती है कि वे सदा वैसे ही दिखते रहें जैसे कि फिल्मी

पर्दे पर दिखते हैं. कहीं न कहीं उन्हें इस बात का ध्यान रहता है कि वे एक नकली जिंदगी जी रहे हैं. अपेक्षाओं का यह दबाव ही कब घबराहट व हताशा की शक्ल ले लेता है और इस घबराहट व दबाव से भागने के लिए वे आत्महत्या तक कर लेते हैं. सफल कलाकारों को दबाव का कारण और भी बड़ा हो सकता है, क्योंकि उनकी प्रतिस्पर्धा सफल कलाकारों तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि प्रत्येक नया आने वाला कलाकार उन्हें कड़ी टक्कर देता है.

फिल्म अवार्ड समारोहों की तस्वीरों को देखकर ऐसा लगता है कि सभी कलाकार बहुत मिल-जुलकर प्यार और स्नेह से रहते हैं, परंतु वास्तविकता प्रायः तस्वीर से भिन्न होती है.क्योंकि इस गलाकाट प्रतिस्पर्धा के युग में कोई किसी का गहरा मित्र हो, ऐसा कम होता है.जब कभी भी कलाकार किसी तरह की समस्या या अवसाद में होता है तो घर से दूर अकेले रहने के कारण उन्हें भावनात्मक सहारा देने वाला भी कोई नहीं होता, जिस कारण वे टूट जाते हैं.

देखने में यह आया है कि इस तरह का दबाव लड़कियों पर कुछ ज्यादा ही होता है, क्योंकि उन्हें अपने रहन-सहन व पहनावे पर अत्यधिक खर्च करना पड़ता है जो कि काम न होने पर संभव नहीं होता. कई बार तो अवसाद की वजह सिर्फ काम की कमी ही नहीं होती बल्कि कुछ व्यक्तिगत और सामाजिक रिश्ते भी होते हैं, जिस कारण अभिनेत्रियाँ आत्महत्या जैसे हादसों के लिए मजबूर होती हैं. वस्तुतः फिल्मी पर्दे के पीछे की ये सच्चाई फिल्मी सितारों के जीवन की गाथा है जो प्रायः आम दर्शक की आँखों के सम्मुख नहीं आती है.

रुपहला पर्दा जहां फिल्मी सितारों की अभिनीत भूमिकाओं को आकर्षक व आदर्श रूप में दिखाता है, वहीं वास्तविक रोल अदायगी को दिखाने में सक्षम नहीं हो पाता. इक्के - दुक्के निर्देशक ही कभी - कभार इस तरह की वास्तविक कहानियों पर फिल्म बनाने को तैयार होते हैं.परंतु पर्दे के रंगों में उस कहानी को गुम होते हुए समय नहीं लगता है और देखते ही देखते वह कहानी इतिहास के पन्नों में धूल धूसरित हो जाती है.

दीपक कुमार
क्षे.का., मैंगलोर

मट्ठे की महिमा

यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः
(जिस प्रकार स्वर्ग में देवों को सुख देनेवाला अमृत है, उसी प्रकार पृथ्वी पर मनुष्यों को सुख देनेवाला तक्र है.' - भावप्रकाश)

दही को मथकर मक्खन निकाल लिया जाय और अधिक मात्रा में पानी मिला कर उसे पुनः मथा जाय तो मट्ठा (तक्र) बनता है. यह शीतल, हल्का, पित्तनाशक, प्यास, वात को नष्ट करनेवाला परंतु कफ बढ़ानेवाला होता है. ताजा मट्ठा सात्त्विक आहार की दृष्टि से श्रेष्ठ है, जो जठराग्नि प्रदीप्त कर पाचनतंत्र कार्यक्षम बनाता है. अतः भोजन के साथ तथा पश्चात मट्ठा पीने से आहार का ठीक से पाचन हो जाता है. जिन्हें भूख न लगती हो, ठीक से पाचन न होता हो, खट्टी डकारें आती हों और पेट फूलते - अफरा चढ़ने से छाती में घबराहट होती हो, उनके लिए मट्ठा अमृत के समान है.

मट्ठे के सेवन से हृदय को बल मिलता है, रक्त शुद्ध होता है और विशेषतः गृहणी की क्रिया अधिक व्यवस्थित होती है. जिन लोगों को दूध रुचता या पचता नहीं है, उनके लिए मट्ठा अत्यंत गुणकारी है.

यह संग्रहणी, बवासीर, चिकने दस्त, अतिसार, उलटी, रक्ताल्पता, मोटापा, मूत्र का अवरोध, भगंदर, प्रमेह, प्लीहावृद्धि, कृमिरोग तथा प्यास को नष्ट करनेवाला होता है. यह शरीर से विजातीय तत्वों और विषैले तत्वों को निकालकर रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाता है.

मट्ठे के विविध उपयोग :

- मट्ठे में जीरा, सौंफ का चुनर व सेंधा नमक मिलाकर पीने से खट्टी डकारें बंद होती हैं.
- ताजे मट्ठे में चुटकीभर सोंठ, सेंधा नमक व काली मिर्च मिलाकर पीने से आँव, मरोड़ तथा दस्त दूर होकर भोजन में रूचि बढ़ाती है.
- जो लोग वजन घटाना चाहते हैं, जिन लोगों की इम्युनिटी सिस्टम कमज़ोर होती है, उन्हें रोजाना मट्ठे का सेवन ज़रूर करना चाहिए. मट्ठे का कैलरीयम हमारे शरीर की हड्डियों को मजबूत करने में मदद करता है. मट्ठे के उपयोग से कमर दर्द और जोड़ों के दर्द से राहत मिलती है.
- मट्ठे का सेवन हमारे शरीर के लिए प्राकृतिक क्लीनर का काम करता है. त्वचा को साफ करने के लिए मट्ठे में गुलाब जल और बादाम के तेल की बूंदे मिलाकर इस पेस्ट को आधे घंटे के लिए चेहरे पर लगाएं और फिर धो लें. मट्ठे में आटा मिलाकर लेप करने से झुर्रियों से छुटकारा पाने में फायदा होता है.
- एक गिलास छास में एक चम्मच भुना पिसा जीरा और थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर पीने से हर प्रकार के बवासीर ठीक होते हैं. इसमें जोड़ दें पुदीना तो आंतो की सूजन ठीक हो जाती है.
- यदि आप खूबसूरत बाल चाहते हैं. तो मट्ठे में नींबू का रस मिलाकर अपने बालों पर लगाएं और एक घंटे के लिए छोड़ दे, फिर बालों को ठंडे पानी से धो लें.
- सुबह शाम मट्ठे पीने से स्मरण शक्ति तेज होती है. मट्ठे में सोंठ डालकर सेवन करें, हिचकी दूर हो जाएगी. खाना खाने के बाद मट्ठा पीने से शरीर की दुर्बलता दूर होती है. गर्मी के मौसम में लू लगने से बचाने के लिए मट्ठे का उपयोग करना चाहिए.

सावधानी - दही एवं मट्ठा ताँबे, काँसे, पीतल एवं एल्युमिनियम के बर्तन में न रखें. सायंकाल के बाद दही अथवा मट्ठे का सेवन नहीं करना चाहिए.

सुप्रिया नाडकर्णी
यूनियन धारा, कें.का.

तकनीशियन - फिल्मों में कैरियर

फिल्मों का नाम सुनते ही हमारे दिमाग में छोटे-बड़े सेट, अभिनेता, अभिनेत्री, नाच गाना, रोल कैमरा जैसे शब्द आ जाते हैं. आज फिल्मों को संवाद का सबसे सशक्त माध्यम माना जाता है, फिल्मों द्वारा आसानी से आम आदमी से जुड़ा जा सकता है तथा अपनी बात उन तक पहुंचायी जा सकती है. फिल्में लोगों को शिक्षा, मनोरंजन और जानकारी देती हैं. सिनेमा आज के समय में मनोरंजन का प्रमुख साधन है. भारत में फिल्मों का निर्माण स्वाधीनता के पहले से हो रहा है. दादा साहेब फाल्के जैसे लोगों के निजी प्रयत्नों से भारत में फिल्मों का निर्माण होना शुरू हुआ तथा बाद में उन्हें प्रतिष्ठा भी मिली. फिर धीरे-धीरे लोगों का फिल्मों के प्रति आकर्षण बढ़ा और आज भारतीय सिनेमा विश्व सिनेमा को कड़ी प्रतिस्पर्धा दे रहा है.

हिन्दी सिनेमा, जिसे बॉलीवुड के नाम से जाना जाता है, हिन्दी भाषा में फिल्म बनाने का बहुत बड़ा उद्योग है. बॉलीवुड नाम अंग्रेजी के हॉलीवुड की तर्ज पर रखा गया है. हिन्दी फिल्म उद्योग मुख्यतः मुंबई में बसा है और यहां बनने वाली फिल्में हिंदुस्तान, पाकिस्तान और दुनिया के कई देशों के दिलों की धड़कन है. प्रत्येक फिल्म में कई संगीतमय गाने होते हैं जिसमें हिन्दी, भोजपुरी, उर्दू, राजस्थानी और बम्बईया इत्यादि भाषाओं के शब्द होते हैं. इन फिल्मों के विषय मुख्यतः प्यार, देश भक्ति, अपराध, भय, परिवार आदि होते हैं.

सिनेमा विज्ञान की अद्भुत देन है. फिल्मों के निर्माण में अनेक प्रकार के वैज्ञानिक यंत्रों का प्रयोग होता है. शक्तिशाली कैमरे, स्टुडियो, कम्प्यूटर, संगीत के उपकरणों आदि के मेल से फिल्मों का निर्माण होता है. इन्हें पूर्णता प्रदान करने में तकनीकी विशेषज्ञों, साज सज्जा अर्थात कला, दिग्दर्शन, एडिटिंग और प्रकाश व्यवस्था की महती भूमिका होती है. अतः फिल्मों में कैरियर के अनूठे अवसर होते हैं.

फिल्मों में सृजनात्मकता (क्रीएटिविटि) और तकनीक का अनूठा समन्वय देखने को मिलता है. आज फिल्मों को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए नई-नई तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है. फिल्में कई प्रकार की होती हैं कमर्शियल, डाक्यूमेंटरी, 3डी, डिजिटल, एनिमेटेड आदि. फिल्म क्षेत्र में एक अच्छे कैरियर की काफी संभावनाएं हैं.

आधुनिक युग में तकनीकी विकास के साथ-साथ फिल्मों के निर्माण का भी दायरा काफी बढ़ा है. अगर प्रतिभा है तो फिल्मों में काम मिलना बहुत मुश्किल नहीं है. आज कल हरेक स्तर के फिल्मों का निर्माण हो रहा है. बड़े बड़े ख्वाब देखने से पहले अपने टैलेंट को निखारना जरूरी है. आज देश में कई प्रतिष्ठित संस्थान है, जहां से डिग्री/डिप्लोमा या पीजी कोर्स कर सकते हैं और उसके बाद आप इन क्षेत्रों में रोजगार पा सकते हैं. अभिनय के अलावा अन्य बहुत से क्षेत्रो में आपको फिल्मों में काम मिल सकता है.

फिल्म निर्देशक

फिल्म निर्माण का सबसे सृजनात्मक और चुनौतीपूर्ण कार्य निर्देशन का होता है. कहानी का चयन, कलाकारों का चयन, लोकेशन, कैमरामैन, गीत संगीतकारों का चयन, शूटिंग की जगह, मंच का निर्माण, कलाकारों के मेक अप आर्टिस्ट का चयन, आदि सभी कार्य की ज़िम्मेदारी निर्देशक और उसकी टीम की होती है. निर्देशक के साथ सहायक निर्देशकों को भी फिल्मों से बहुत से कामों को अंजाम देना होता है.

निर्माण या निर्माता

निर्माता का मुख्य कार्य, वित्त का प्रबंध करना होता है. इसके अलावा फिल्म से संबन्धित विभिन्न तरह के कार्यों की निगरानी करना और प्रबंधन करना भी होता है. इसमें आपको फिल्म में कार्य करने हेतु चयनित कलाकारों के साथ करार, विभिन्न तरह की कागजी कारवाई जैसे किसी विशेष स्थान पर शूटिंग करनी है तो उसकी अनुमति, कानूनी प्रक्रियाओं का निपटान, चयनित कलाकारों के साथ उनकी फीस को लेकर तोल-मोल, सभी तकनीशियनों की व्यवस्था और उनकी सुविधाओं का ध्यान, फिल्म का प्रचार, उसका वितरण और मीडिया के साथ उसके प्रचार की तैयारी आदि. निर्माता का कार्य अत्यंत ज़िम्मेदारी भरा होता है. इसमें लाभ और नुकसान दोनों की ज़िम्मेदारी भी उसकी ही होती है. इसलिए इस कार्य हेतु आपको और अधिक अनुभव सामंजस्य आवश्यक है ताकि आप इस कार्य को सफलतापूर्वक कर सकें.

आप सरकारी संस्थानों, जैसे दूरदर्शन आदि पर भी कार्य कर सकते हैं. निजी टीवी चैनलों, विज्ञापनों का निर्माण इत्यादि में भी काफी तकनीक का प्रयोग होता है. अतः आप इन क्षेत्रों को भी कैरियर के रूप में चुन सकते हैं.

इसके अलावा आप खुद का वेंचर भी शुरू कर सकते हैं. इसमें दी जानी वाली सैलरी आपके काम और अनुभव के आधार पर भिन्न भिन्न हो सकती है. आपको सिर्फ धैर्य के साथ काम करने की आवश्यकता है.

फिल्मों में कैरियर बनाने के लिए अब यह आवश्यक नहीं रह गया है कि फिल्मों में आपका परिवार हो. बढ़ते प्रतिस्पर्धा में टैलेंट की भी पूछ परख हो रही है. इसलिए आवश्यक यह है कि आपको अपनी प्रतिभा पर भी विश्वास होना चाहिए.

सिनेमेटोग्राफर

इसे आप साधारण शब्दों में कैमरामैन समझ सकते हैं. जो कैमरा को चलाने में दक्ष होता है और कुशलतापूर्वक इसका प्रयोग करता है. यह निर्देशक को किसी

दृश्य को फिल्माने के लिए उचित फ्रेम देता है. उचित लाइट, दृश्य को दिखाने के लिए उचित लेंस देता है.

संपादक / एडीटर

निर्देशक द्वारा जो विभिन्न स्थलों पर हजारों दृश्य कैप्चर किए गए हैं उनका सही रूप में क्रम निर्धारण करना और जहां दृश्य बहुत लंबे होते हैं, उनकी कतरब्यौंत करके उनकी निरंतरता को कायम रखना.

स्क्रीप्ट राइटर

एक स्क्रीप्ट राइटर को लिखित कहानियों को अपनी कल्पना और नई सोच के आधार पर स्क्रीन पर जीवंत रूप देना होता है या किसी उपन्यास या कहानी को स्क्रीन पर जीवंत करना पड़ता है. यदि आप एक अच्छे लेखक हैं और ऐसी क्षमता रखते हैं कि आप अपनी कल्पना को स्क्रीन पर प्रदर्शित कर सकते हैं तो स्क्रीप्ट राइटिंग के क्षेत्र में काफी संभावनाएं हैं. यहाँ दृश्य की दृश्यात्मकता के अनुसार, उसकी संकल्पना कर लिखना होता है. संवाद, लेखक / पटकथा लेखक के रुप में भी आपको मौका मिल सकता है.

सहायक निर्माता

किसी भी फिल्म के निर्माण में सहायक निर्माता का रोल और ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी होती है. निर्माण के दौरान प्रबंधन का पूरा कार्य सहायक निर्माता का होता है. स्क्रिप्ट के अनुसार मंच, प्रकाश की व्यवस्था करना, कलाकारों का ध्यान रखना और समयानुसार शूटिंग का कार्य पूरा करना इत्यादि.

फ़ाइन आर्ट्स में स्नात्तक या स्नानोकोत्तर की उपाधि आपको फिल्मों में सहायक निर्माता के रूप में कार्य दिलवाने में मदद करेगी.

संगीत

हिंदी फिल्मों में गानों का महत्व होता है. साथ ही किसी लिखित दृश्य को उसके विषय के अनुसार, मूड के अनुसार, लिखित दृश्य में निहित अर्थ और संदेश के अनुसार और निर्देशक की कल्पना के अनुसार संगीत का निर्माण किया जाता है. जिससे वह दृश्य कर्णप्रिय और जीवंत बने और कहानी का प्रवाह बना रहें. इसमें प्रयोग किए जाने वाले वाद्य यंत्रों को बजाने के लिए काफी संख्या में सहयोगी कलाकारों की आवश्यकता पड़ती है. अतः यह क्षेत्र संभावनाओं से परिपूर्ण है.

मेक अप (रूप सज्जा) एवं ड्रेस डिजाइनर

फिल्मों में दिखाए जाने वाले कलाकारों को देख कर हम सभी को लगता है, वाह ! क्या सुंदर स्त्री है वाह ! कितने अच्छे कपड़े पहने हैं, उसके जूते कितने आकर्षक हैं. किन्तु इस आकर्षण का श्रेय काफी हद तक उसके मेक अप कलाकार को जाता है. जो दृश्य को ध्यान में रखकर, कलाकारों की रूप सज्जा एवं ड्रेस डिजाइन करते हैं. उनके परिधानों का चयन करते हैं, ताकि जब पर्दे पर दृश्य दिखाये जायें तो वह (कलाकार) उसके अनुरूप लगे और दृश्य स्वाभाविक हो.

एक सफल मेक अप कलाकार के रूप में कैरियर बनाने के लिए आवश्यक है कि आप को सभी तरह की मेक अप विधाओं की जानकारी होनी चाहिए तथा आपको मेक अप से संबधित सभी उपकरणों के प्रयोग में दक्षता होनी चाहिए. अन्यथा कॉस्मेटोलाजी कोर्स कर बेहतर दक्षता प्राप्त की जा सकती है और मेक अप कलाकार के रूप में उज्वल कैरियर बनाया जा सकता है.

प्रॉडक्शन प्लानर:

इसे आप संयोजक, प्रमुख संयोजक या कंट्रोलर भी कह सकते हैं. इसका कार्य फिल्म निर्माण के दौरान की जाने वाली कागजी प्रक्रियाएँ जैसे फिल्म से संबन्धित रिकार्डों का रखरखाव, वितरण, खरीददारी आदेश, किसी वस्तु का विक्रय आदि से संबन्धित होता है.

यह कार्य मुख्यतः सप्लाई चैन प्रबंधन पर निर्भर करता है. अतः इस क्षेत्र में कार्य करने हेतु प्रबंधन संबन्धित कोर्स, परिवहन और लॉजिस्टिक प्रबंधन की जानकारी होना आवश्यक होता है.

फिल्म निर्माण और उससे जुड़े तकनीशियन बनने के लिए आवश्यक कोर्स हेतु निम्न संस्थाओं से संपर्क किया जा सकता है जो इसकी विधिवत तैयारी और जानकारी प्रदान करती हैं. इस क्षेत्र में अपना कैरियर बनाने की सोच है तो निम्न संस्थाओं से संबन्धित डिग्री कोर्स किया जा सकता है ताकि इस क्षेत्र की अच्छी जानकारी प्राप्त हो और कैरियर प्रभावी ढंग से शुरू हो सके.

1. फिल्म एंड टेलिविजन ऑफ इंडिया, पुणे
2. सत्यजित रे फिल्म एंड इंस्टीट्यूट, कोलकाता
3. सेंटर फॉर रिसर्च इन आर्ट ऑफ फिल्म एंड टेलिविजन , नई दिल्ली
4. विसलिंग वुड्स इंटरनेशनल, मुंबई
5. एशियन अकेडमी ऑफ फिल्म एंड टेलिविजन, नोएडा

इस क्षेत्र की ओर आकर्षण का मुख्य कारण होता है पैसा और प्रसिद्धि, किन्तु इन दोनों चीजों को पाने के लिए आपको कड़ी मेहनत करना भी उतना ही आवश्यक होता है. क्योंकि फिल्मों की शूटिंग कई-कई दिनों तक चलती रहती है. किसी दृश्य का फिल्मांकन करने में कभी घंटे तो कई हफ्तों का समय लगता है. अतः इस दौरान आपको शायद खाने की भी फुर्सत ना मिले. अतः केवल बाहर से दिखने वाले ग्लैमर से आकर्षित न होकर अपनी काबिलियत और आत्म विश्वास के बल पर फिल्मों के तकनीशियन के रूप में अपना कैरियर चुनना आवश्यक है.

कुन्दन भगत
क्षे.का., मुम्बई (उत्तर)

दिनांक 18.05.2018 को पंजाब नैशनल बैंक द्वारा आयोजित नराकास (बैंक) की छमाई बैठक में देहरादून नराकास की पत्रिका 'दून प्रभा' का विमोचन करते हुए उप निदेशक, श्री अजय मलिक जी भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग साथ में पत्रिका के संपादकीय मंडल में, यूनियन बैंक ऑफ इंडिया की ओर से श्री विक्रम सिंह चौहान, राजभाषा अधिकारी.

दिनांक 16 व 17 अप्रैल, 2018 को स्टाफ महाविद्यालय, बेंगलूरु में दो दिवसीय कंप्यूटर आधारित हिन्दी कार्यशाला का सफल आयोजन सम्पन्न हुआ. बेंगलूरु अंचल की विभिन्न शाखाओं से आए प्रतिभागियों के साथ प्राचार्य, श्री कल्याण कुमार, उप महाप्रबंधक. साथ में (बाएँ से बैठे हुए) संकाय श्री कृष्ण कुमार, प्रबंधक (राभा), सुश्री सविता शर्मा, मुख्य प्रबंधक (राभा) व श्री दीपक कुमार, सहायक प्रबंधक (राभा).

दिनांक 11 अप्रैल 2018 को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, पन्ना में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, क्षेत्रीय कार्यालय, रीवा से राजभाषा प्रभारी, श्री अखिलेश कुमार सिंह द्वारा प्रतिभागिता की गयी. बैठक के पश्चात लिया गया समूह चित्र.

बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के तत्वावधान में पंजाब नेशनल बैंक, जोधपुर द्वारा दिनांक 28/5/2018 को आयोजित विचार गोष्ठी 'इक्कीसवीं सदी की बैंकिंग : बदलती बैंकिंग' में भाग लेकर प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किया– नरपत सिंह गहलोत, जोधपुर मुख्य शाखा.

क्षेत्रीय कार्यालय, सिलीगुड़ी द्वारा नराकास के तत्वावधान में एक दिवसीय राजभाषा तकनीकी संगोष्ठी का आयोजन किया गया. कार्यक्रम में उपस्थित अतिथि विशेष एवं प्रतिभागियों क्षेत्र प्रमुख श्रीमती राजश्री बगलरी एवं उप क्षेत्र प्रमुख, श्री वेंकट राव ने को संबोधित किया. इस कार्यक्रम में नराकास के 53 सदस्य कार्यालयों ने प्रतिभागिता की.

दिनांक14.05.2018 को बैंक नराकास कोच्चि (एर्णाकुलम) की 59वीं अर्धवार्षिक बैठक का आयोजन किया गया. इस कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री अ कृष्णस्वामी, क्षेत्र प्रमुख, नोडल क्षेत्रीय कार्यालय, एर्णाकुलम ने की. इस बैठक में मुख्य अतिथि के रूप में डॉ सुनीता देवी यादव, उप निदेशक, क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय, कोच्चि एवं विशेष अतिथि के रूप में श्री के पी पटनायक, महा प्रबंधक, भारतीय रिजर्व बैंक, एर्णाकुलम उपस्थित रहे. इस अवसर पर नराकास, कोच्चि की पत्रिका 'सागर संगीत' का विमोचन किया गया.

समाचार

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, नागपुर के तत्वावधान में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, क्षेत्रीय कार्यालय, नागपुर द्वारा दिनांक 17 मई 2018 को कार्यालय के सम्मेलन कक्ष में शब्द निर्माण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया. उपमहाप्रबंधक, श्री सुधाकर राव; संयोजक बैंक (बैंक ऑफ इंडिया) के सदस्य सचिव, श्री निरंजन बनरवाल; राजभाषा अधिकारी मुकेश पाटिल व विभिन्न बैंक के 24 प्रतिभागियों ने इस प्रतियोगिता में हिस्सा लिया.

दिनांक 15 जून 2018 को क्षेत्रीय कार्यालय, भोपाल में क्षेत्र प्रमुख, श्री गुरतेज सिंह एवं उप क्षेत्र प्रमुख की अध्यक्षता में एक दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया. कार्यशाला में अतिथि संकाय के रूप में श्री डी के सिंह, मुख्य प्रबंधक(राभा) सेवानिवृत्त एवं श्री अर्पित जैन प्रबंधक (राभा), स्टाफ प्रशिक्षण केंद्र को भी आमंत्रित किया गया था. क्षे का भोपाल की राजभाषा प्रभारी श्रीमती उपासना सिरसैया ने कार्यशाला का संचालन किया.

अंचल प्रमुख, श्रीमती मोनिका कालिया द्वारा अहमदाबाद अंचल की गृह पत्रिका–यूनियन संस्कृति का 07.06.2018 को विमोचन किया गया. साथ में, (दायें से) श्री कीर्ति बैनर्जी, उप अंचल प्रमुख; अमित कुमार, प्रबंधक; श्री रवि चंदर, उप क्षेत्र प्रमुख, विपिन शुक्ला, समप्र, आईएफबी.

क्षेत्रीय कार्यालय, इंदौर के सभागार में, दिनांक 15.06.2018 को एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया. उक्त कार्यशाला में प्रतिभागियों के साथ समूह चित्र में श्री राजेश कुमार, क्षेत्र प्रमुख इंदौर, साथ ही प्रबंधक (राभा), सुश्री निधि सोनी.

क्षेत्रीय कार्यालय, रीवा के अंतर्गत रीवा शहर के समदड़िया होटल में दिनांक 10.05.2018 को एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया. इस अवसर पर उपस्थित प्रतिभागियों को कोर राजभाषा सोल्यूशन की जानकारी देते हुए श्री अखिलेश कुमार सिंह, राजभाषा अधिकारी, क्षेत्रीय कार्यालय, रीवा.

दिनांक 26.06.2018 को स्टाफ प्रशिक्षण केंद्र, पवई मुंबई उत्तर, दक्षिण एवं पश्चिम क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा राजभाषा संगोष्ठी सह कार्यशाला का आयोजन किया गया. इस दौरान मुख्य अतिथि के रूप में गृह मंत्रालय की उप निदेशक (कार्यान्वयन) डॉ. सुनीता यादव उपस्थित रहीं. कार्यक्रम की अध्यक्षता, उप अंचल प्रमुख श्री निहार रंजन सामल ने की. विशिष्ट अतिथि के रूप में बैंक के अखिल भारतीय राजभाषा प्रभारी श्री राजेश कुमार एवं स्टाफ प्रशिक्षण केंद्र के प्रभारी श्री अमित कुमार सिन्हा उपस्थित रहे.

फिल्म का सफर: फिल्मों के विभिन्न क्षेत्र

फिल्म निर्माण/ उत्पादन एक प्रारम्भिक स्टोरी आइडिया या कमिशन से, पटकथा लेखन, शूटिंग, सम्पादन, निर्देशन एवं दर्शकों तक उसके वितरण के माध्यम से फिल्म निर्माण की एक प्रक्रिया है. आमतौर पर, इसमें भारी संख्या में लोग शामिल रहते हैं और इसके पूरे होने में कुछ महीने से लेकर कुछ वर्ष भी लग जाते हैं. फिल्मों का कारोबार सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों की एक विशाल श्रेणी में घटित होता है. फिल्म आधुनिक युग में मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय साधन माना जाता है. दादा साहब फाल्के जैसे जुझारु लोगों ने निजी प्रयत्नों से फिल्मों को भारत में प्रतिष्ठित किया. आज भारत का चल-चित्र उद्योग विश्व सिनेमा से प्रतिस्पर्धा कर रहा है. फिल्म निर्माण एक कला है. बदलते वक्त के साथ फिल्मों का व्यय करोड़ों के आकड़े छूने लगा है. फिल्म की कमान निर्देशक के हाथ में होती है. साथ ही अभिनेता, अभिनेत्री, सह-अभिनेता और अन्य कलाकार अपने-अपने अभिनय से फिल्म में जान डालने का कार्य करते हैं. गीत-संगीत देने वालों का भी प्रमुख स्थान होता है.

निर्देशन का अर्थ दिशा दर्शन और मार्गदर्शन करना है. फिल्मों के समुचित प्रभाव से उसकी व्यावसायिकता तय होती है और समुचित प्रभाव को बनाना निर्देशक का कार्य होता है. छाया संयोजन, संगीत, सेट और वेषभूषा की परिकल्पना, अदाकारों का चुनाव, अदायगी, कैमरे का नज़रिया जैसे बहुत से पहलुओं पर ध्यान देना निर्देशक का काम है. निर्देशन फिल्म के प्रारम्भ से फिल्म के पर्दे पर उतरने तक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है. फिल्म की बारीकियों पर नज़र रखते हुए उसको प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य निर्देशक का होता है. निर्देशक एक कहानी खोजता है जो कि किसी किताब, नाटक, अन्य फिल्म, सत्य-कथा, मौलिक आइडिया से मिलती जुलती हो सकती है.

अभिनय किसी अभिनेता या अभिनेत्री के द्वारा किया जाने वाला वह कार्य है जिसके द्वारा वे किसी कथा को दर्शाते हैं, साधारणतया किसी पात्र के माध्यम से. अभिनय का उद्देश्य होता है किसी पद या शब्द के भाव को मुख्य अर्थ तक पहुंचा देना; अर्थात दर्शकों या सामाजिकों के हृदय में भाव या अर्थ से अभिभूत करना. एक अभिनेता अपने वजूद से निकल कर फिल्म के पात्र को निभाता है.

यह सिद्ध हो चुका है यदि अभिनेता अपने अभिनय पर सावधानी से ध्यान नहीं देता तो वह न दर्शकों को प्रभावित कर सकता है और न रंगमंच पर किसी भी प्रकार की रचनात्मक सृष्टि कर सकता है.

सुव्यवस्थित ध्वनि, जो रस की सृष्टी करे, संगीत कहलाती है. गायन, वादन व नृत्य, ये तीनों ही संगीत हैं. संगीत का नाम इन तीनों के एक साथ व्यवहार से पड़ा है. गायन मानव के लिए प्राय: उतना ही स्वाभाविक है जितना कि भाषण. फिल्मों का संगीत एक अभिन्न अंग है. सुर के माध्यम से अपने मन की बात अपने मीत तक पहुँचने की कला का फिल्मों में प्रारम्भ से ही प्रयोग किया गया है.

संपादन का अर्थ है किसी लेख, पुस्तक, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक या सावधिक पत्र या कविता के पाठ, भाषा, भाव या क्रम को व्यवस्थित करके तथा आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन करके उसे सार्वजनिक प्रयोग अथवा प्रकाशन के योग्य बना देना. फिल्मी जगत में इसका बहुत महत्व है. फिल्म संपादक फिल्मों, टीवी शो, या अन्य फिल्म परियोजनाओं के लिए कच्ची फुटेज शॉट को एक तैयार उत्पाद में बदलने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं. फिल्म संपादन को एक कला या कौशल के रूप में वर्णित किया गया है, एकमात्र कला जो कि सिनेमा के लिए आदित्य है.

हर नयी परियोजना के साथ, एक नया रूप और आकार रचा जाता है. फिल्मों में भी विभिन्न पात्रों कों काल्पनिक दुनिया के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है. व्यक्तित्व का बड़ा हिस्सा इंसान का पहनावा, वेषभूषा और हाव-भाव है. वेषभूषा का सिनेमा एक अभिन्न अंग रहा है. फिल्मों के माध्यम से हमारे समाज में फ़ैशन का बोलबाला है. हर संस्कृति में एक सामाजिक संदेश व्यक्त करने के लिए मौजूदा फ़ैशन का सचेत निर्माण, संयोजन और कपड़े पहनने के ढंग से नियंत्रण होता है.

रुचि यादव
सरल, क्षे.का., जयपुर

आपकी नज़र में...

आपके बैंक की तिमाही हिंदी गृह पत्रिका 'यूनियन सृजन' का नवीनतम अंक जनवरी-मार्च 2018 प्राप्त हुआ. हार्दिक आभार. विगत अंकों की तरह यह अंक भी अत्यंत सूचनापरक और ज्ञानवर्द्धक है.

अंक में 'कवि केदारनाथजी का सफर' तथा 'मेहनत एवं लगन की एक मिसाल पद्मश्री गुलाबो सपेरा' हिंदी के हर पाठक को बहुविध नई जानकारियां देता है. कविताएं 'मेरी मां' एवं 'मेरी मां कुछ नही जानती हैं' हृदयस्पर्शी है. 'वर्तमान में साइबर क्राइम' और 'रुपये का इतिहास' आलेख सूचनाप्रद लगे. 'कहां खो रही है बोलियों की मिठास', हमें वर्तमान बोलियों की स्थिति पर सोचने को मजबूर करती है. यात्रा वृत्तांत - 'मेरी अंडमान यात्रा' एवं लेख 'जालंधर' भी पठनीय है. इसके अलावा पत्रिका के सभी लेख, कविताएं एवं कहानी स्तरीय एवं विषयानुरूप है. सभी लेखकों को मेरी बधाई. पत्रिका में प्रकाशित छायाचित्रों से राजभाषा संबंधी गतिविधियों की झलक मिलती है. पत्रिका विषय-वस्तु और प्रस्तुति दोनों ही स्तरों पर सराहनीय है. इसके लिए में संपादक महोदया और उनकी पूरी टीम को बधाई देता हूँ.

हार्दिक शुभकामनाओं सहित !

प्रवीण कुमार, प्रबंधक (राजभाषा)
भारतीय स्टेट बैंक
प्रशासनिक कार्यालय, राजकोट

'यूनियन सृजन' के इस अंक को हाथ में लेते ही मुख पर सहज मुस्कान खिल गई. विविधताओं से भरे इस अंक में हर एक पन्ना कोई न कोई संदेश लिए हुए है. चाहे साहित्य की दुनिया पर नजर डालें या फिर यात्रा सृजन पर, हर एक पन्ना अपने आप में एक युग गाथा है. काव्य का चयन अपने आप में उत्कृष्ट सम्पादन का प्रमाण है. 'भारत की प्रथम महिला' लेख काबिल-ए-तारीफ है और प्रासंगिक भी! अगर बैंकिंग या फिर किसी भी संस्था के संदर्भ में देखे तों संसाधन और उसके उचित प्रयोग पर ही संस्था की सफलता निर्भर करती है, उसी से संबद्ध 'सीमित संसाधनों का अधिकतम उपयोग' लेख मुझे इस अंक की आत्मा प्रतीत हुई. संक्षेप में कहें तो सृजन के इस अंक ने भी मुझे अपने व्यस्त समय-सारणी में से कुछ क्षण चुरा कर उसे पूरा पढ़ने पर मजबूर कर दिया. पूरे सम्पादक मण्डल को अनेकानेक साधुवाद. अगले अंक की प्रतीक्षा में...

के. वेंकट राव
उप क्षेत्र प्रमुख,
क्षे.का., सिलीगुड़ी

RNI No. MAH HIN/2016/68433

नि:शुल्क वितरण हेतु

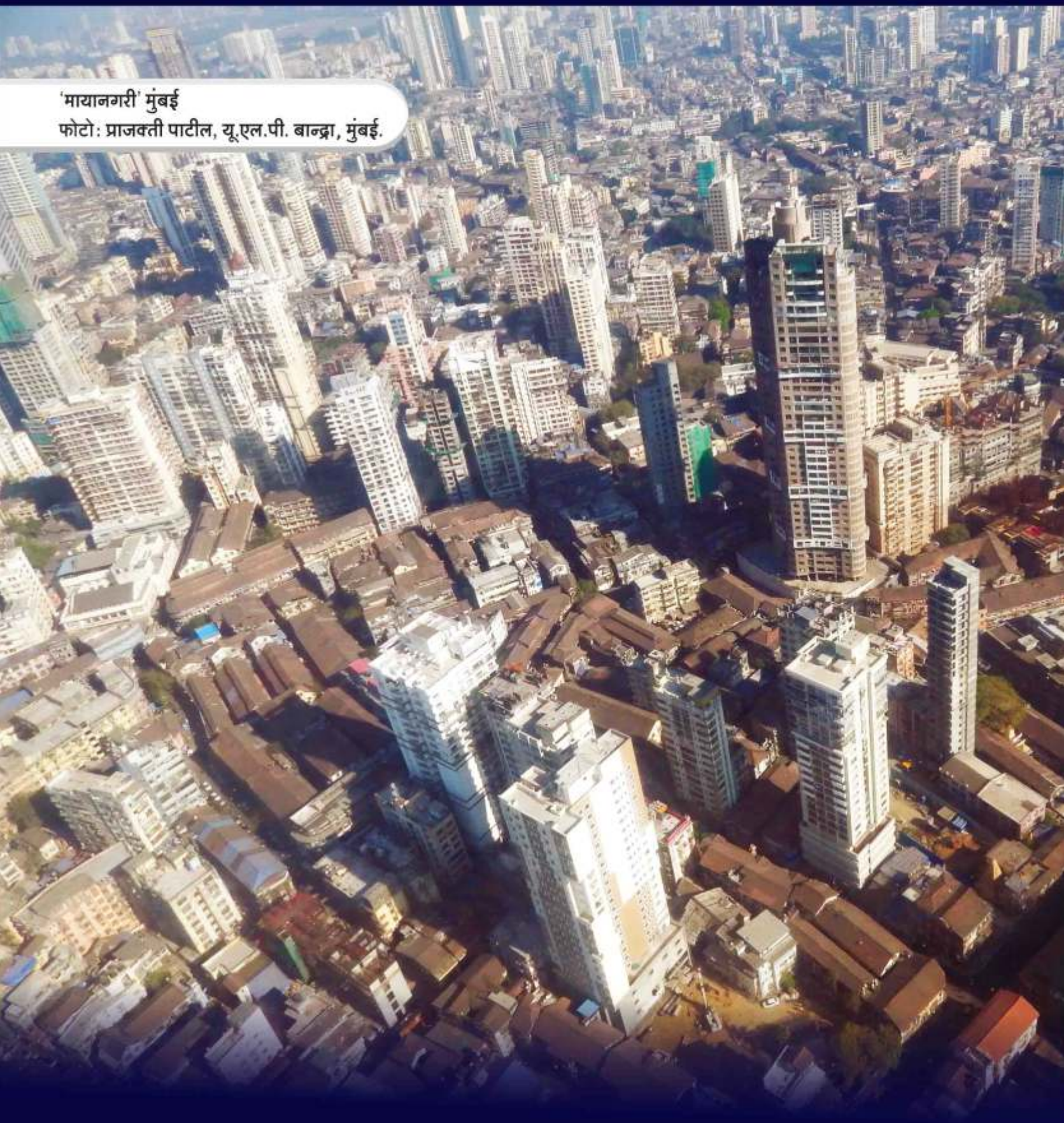

'मायानगरी' मुंबई
फोटो: प्राजक्ती पाटील, यू.एल.पी. बान्द्रा, मुंबई.

Printed and Published by Dr. Sulabha Shrikant Kore, on behalf of Union Bank of India, Printed of Jayant Printery, 352/354, Murlidhar Temple Compund, Near Thakurdwar Post Office, J.S.S. Road, Mumbai - 400 002 and Published Union Bank of India, 239, Union Bank Bhavan, Vidhan Bhavan Marg, Nariman Point, Mumbai - 400 021. Editor - Dr. Sulabha Shrikant Kore.